सचित्र तत्त्वज्ञान

बालपोथी

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी
महाराज साहेब

विषय - अनुक्रम

१. अपने भगवान
२. अपने गुरू और परमेष्ठी
३. धर्म
४. श्रावकों की दिनचर्या
५. जिनमंदिर (दहेरासर) विधि
६. सात व्यसन और अभक्ष्य त्याग
७. शरीर और जीव
८. जीव के छह स्थान
९. जीव कितने प्रकार के होते है ?
१०. जीव का स्वरूप (असली और नकली)
११. जीव, कर्म, ईश्वर
१२. अजीव और षड्द्रव्य
१३. विश्व (द्रव्य और पर्याय)
१४. नौ तत्व
१५. पुण्य और पाप
१६. आस्रव
१७. संवर
१८. निर्जरा
१९. बन्ध
२०. मोक्ष

नित्य मंगल - पाठ

चत्तारि मंगलं

अरिहंता मंगलं
सिद्धा मंगलं
साहू मंगलं
केवलि-पन्नत्तो धम्मो मंगलं ।
(चार पदार्थ मंगल है - अरिहंतों, सिद्धों, साधुओं और केवलि - प्ररूपित धर्म ।)

चत्तारि लोगुत्तमा

अरिहंता लोगुत्तमा
सिद्धा लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा
केवलि-पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।
(चार पदार्थ लोकोत्तम है - अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवलिप्ररूपित धर्म, ये चारो लोकोत्तम हैं ।)

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि

अरिहंते शरणं पव्वजामि
सिद्धे शरणं पव्वजामि
साहू शरणं पव्वजामि
केवलि-पन्नत्तं धम्मं शरणं पव्वजामि
(संसार के भय से बचने के लिए - अरिहंत, सिद्ध, सुसाधु और केवलि प्ररूपित धर्म को मैं शरणरूप स्वीकार करता हूं ।)

सम्यक्त्व की धारणा

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरूणो ।
जिणपन्नत्तं तत्तं, ईअ सम्मत्तं मए गहिअं ॥
(जीवन-पर्यंत अरिहंत मेरे देव हैं, सुसाधु मेरे गुरू है और जिनेश्वर प्ररूपित तत्त्व-धर्म, यह सम्यक्त्व मैंने शरणरूप स्वीकार किया है ।)

सचित्र तत्त्वज्ञान

बालपोथी

लेखक

सूक्ष्म तत्त्वचिंतक, बीसवीं सदी में
चित्रालेखनों के आदि
पुरस्कर्ता, वर्धमान तपोनिधि, युवाजनोद्धारक

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्
विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी
महाराज साहब

प्रकाशक

दिव्यदर्शन ट्रस्ट

३९, कलिकुंड सोसायटी,
धोलका, जि. अहमदाबाद
(गुजरात) - ३८७८१०

नूतन संस्करण
की द्वितीय आवृति

वीर संवत २५३२
विक्रम संवत २०६२
मूल्य - ५०/- रू.

लाभ लिया अनामी, हुए निर्जरा के कामी
श्रुत भक्त और गुरू भक्त
अनेक अनामी सुश्रावक

प्राप्तिस्थान

दिव्यदर्शन ट्रस्ट
३९, कलिकुंड सोसायटी,
धोलका, जि. अहमदाबाद
(गुजरात) - ३८७८१०.
फोन : ०२७१४-२२४८८२

दिव्यदर्शन ट्रस्ट
मयंकभाई पी. शाह
१९/२१, बोरा बाझार स्ट्रीट,
पहली मंजिल, मुंबई-४००००१.
फोन : ०२२-२२६६६३६३

दिव्यदर्शन भवन
कालुशाह की पोल
कालुपुर,
अहमदाबाद-३८०००१.

दिव्यदर्शन ट्रस्ट
२८/३०, वासुपूज्य बंगलोझ,
रामदेवनगर, फन रिपब्लिक के सामने,
अहमदाबाद-३८००१५.
फोन : ०७९-२६८६०४३१.

डीझाईन
जैनम् ग्राफीक्स,
अहमदाबाद.
फोन : २५६२७४६९.

प्रकाशकीय

जनमानस के ज्ञाता, आत्मजागृति के उद्गाता, सूक्ष्म तत्त्वचिन्तक, परम श्रद्धेय परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् **विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज** ने व्यवहारिक विचारधारा को जैन स्पर्श देने का सबल और सफल पुरूषार्थ किया। प्रभुशासन के अत्युत्कृष्ट सिद्धान्त प्रतिदिन के जीवन व्यवहार के विचारों के साथ मिल जाये तो सामान्य जनों के विचारों की कक्षा बढे और उस के साथ व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय चारित्र्य का भी विकास हो। आध्यात्मिक शिक्षण शिबिर, वैराग्यवाही देशना तथा चाँदनी के उजास में लिखे प्रेरणा का प्रकाश फैलाते लेख और पुस्तकों के माध्यम से जिनशासन के सिद्धान्तों को सरल और सुपाच्य बनाकर लोगों के दिलमें बसाने का भरसक प्रयत्न किया।

प्रस्तुत 'सचित्र तत्त्वज्ञान बालपोथी' में भी देव-गुरू-धर्म, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, जीवविचार, नवतत्त्व आदि उपयोगी तत्त्वों को अत्यंत सरल तौर से समझाकर हम सब के मन और जीवनमें उतारने का प्रबल पुरूषार्थ किया है। जिनशासन के शास्त्रीय तत्त्वों को दैनिक घटती घटनाओं के चित्रों के माध्यम से समझाने का शायद यह प्रथम प्रयास होगा। तत्पश्चात् किये गये प्रयास किसी न किसी रूपमें इस पुस्तक का आधार लेकर हुए है एसी संभावना है। आज से ३२ साल पूर्व प्रकाशित हुई तृतीय आवृत्ति के बाद जो शून्यावकाश हुआ था उसे दूर करने का हमने नम्र प्रयास किया है।

प्रस्तुत प्रकाशन में प.पू.वैराग्यदेशनादक्ष आचार्यदेव श्रीमद् **विजयहेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के शिष्य पू.मुनिश्री **संयमबोधिविजयजी महाराज** का हमें बहुत ही अच्छा मार्गदर्शन मिला है। पूज्यश्री के कल्पनाचित्रों को पुनः सजीवन करने के लिए ख्यातिप्राप्त चित्रकार विजयभाई श्रीमालीने बहुत श्रम उठाया है। प.पू. तार्किकाग्रणी आचार्यदेव श्रीमद् **विजयजयसुंदरसूरिजी महाराज** ने 'अनुमोदना' नामका आमुख लिखने की कृपा कर तथा परिष्कृत लेखों को अपनी शास्त्रपूत दृष्टि से संमार्जित कर पुस्तक की उपादेयता को बढा दिया है। पुस्तक प्रकाशन को शक्य बनानेवाले अनामी आर्थिक सहयोग दाताओं को कैसे भूल सकें ? सहयोगी सर्व का अंतःकरण से आभार...

सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा से बालभाव में रहे सर्व जीवों को आध्यात्मिकता की राह में अग्रसर करने में समर्थ पुस्तक के अभ्यास से सर्व जीव आत्मज्ञान का प्रकाश पाकर आत्मकल्याण को प्राप्त करें।

दिव्यदर्शन ट्रस्ट
कुमारपाल वी. शाह

अनुमोदना

प.पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजयजयसुंदरसूरिजी म.सा.

धार्मिक चित्रजगत् को हम याद करें तब अन्तिम शतक में पू.गुरूदेव **श्री भुवनभानुसूरि म.सा.** स्मरणपट में आये बिना नहीं रहते ।

हजारों सालों से जैनशासन में चित्रों से धार्मिक प्रसंगो की अभिव्यक्ति की गौरवपूर्ण परंपरा रही है । एक पूरे पन्ने को पढने से जितना स्मरणांकित नहीं होता है उतना एक ही चित्र को देख लेने से याद रह जाये उसमें आश्चर्य नहीं है ।

पू.स्व.गुरूदेव श्री कईबार कहते थे कि तीर्थंकर भगवन्त आजन्म बैरागी होते है फिर भी **'राजीमती कुं छोड के नेम संजम लीना, चित्रामण जिन जोवते वैरागे मन भीना'** यह **पार्श्व पंचकल्याणक पूजा** की पंक्ति जिन्होंने पढी हों उनको ख्यालमें आ जायेगा की **श्री पार्श्वनाथ भगवान का** चित्त भी - **राजीमती** का त्याग कर संयम ग्रहण करने जा रहे **नेमनाथ प्रभुजी** का चित्रपट देखकर बैराग्य से वासित और प्लावित हो गया था ।

पूर्वकालीन ऋषियों, मुनियों और धर्मिष्ठ गृहस्थों ने चित्रपटों पर लाखो रूपये और किमती समय का जो योगदान दिया है उन सब के हम ऋणी है ।

पूज्यश्री को एक बात का बहुत खेद था कि आज के युगमें अत्यंत बिभत्स गन्दे विकृत मलिन दुराचारों की भेंट देतें चित्रों को देख देखकर करोडो लोग पापों की गठरियों के ढेर बांध रहे हैं तब प्रजा को धर्म और नीति का शिक्षण देनेवाले चित्रों की आर्ट गैलेरी गाँव गाँव ओर नगर नगर में होनी चाहिए किन्तु जैनियों का इस ओर अब प्रायः ध्यान नहीं के बराबर है । जैन इस कार्य में बहुत कम दिलचस्पी दिखाते है । सचमुच अगर बालकों-युवानों को हम संस्कारी बनाये रखना चाहते तैं तब गाँव गाँव हर तीर्थों में सुसंस्कारो का दान करती चित्रशालायें होनी अत्यावश्यक है ।

पूज्य श्री गुरूदेवने अपने अस्तित्वकाल में अत्यंत कार्यव्यस्त रहते हुए भी धार्मिक चित्रों को तैयार कराने में बहुत समय लगाया था । धर्मक्रियाओं का चित्रांकन उनकी कारकिर्दी के गगन का चमकता हुआ सितारा है ।

पू. हेमरत्न सूरिजी म.सा. और मुनिराज **श्री संयमबोधिविजयजी** स्व. पूज्यश्री की इस परंपरा को निभाने के लिये कटिबद्ध है तब **सुश्रावक कुमारपालभाई** से हम एक आशा रख सकते है कि वे पूज्य स्व. गुरूदेवश्री के जीवन प्रसंगों की एक चित्रमय किताब तैयार करावें । वह एक अमुल्य श्रद्धांजलि गिनी जायेगी ।

इति शम्

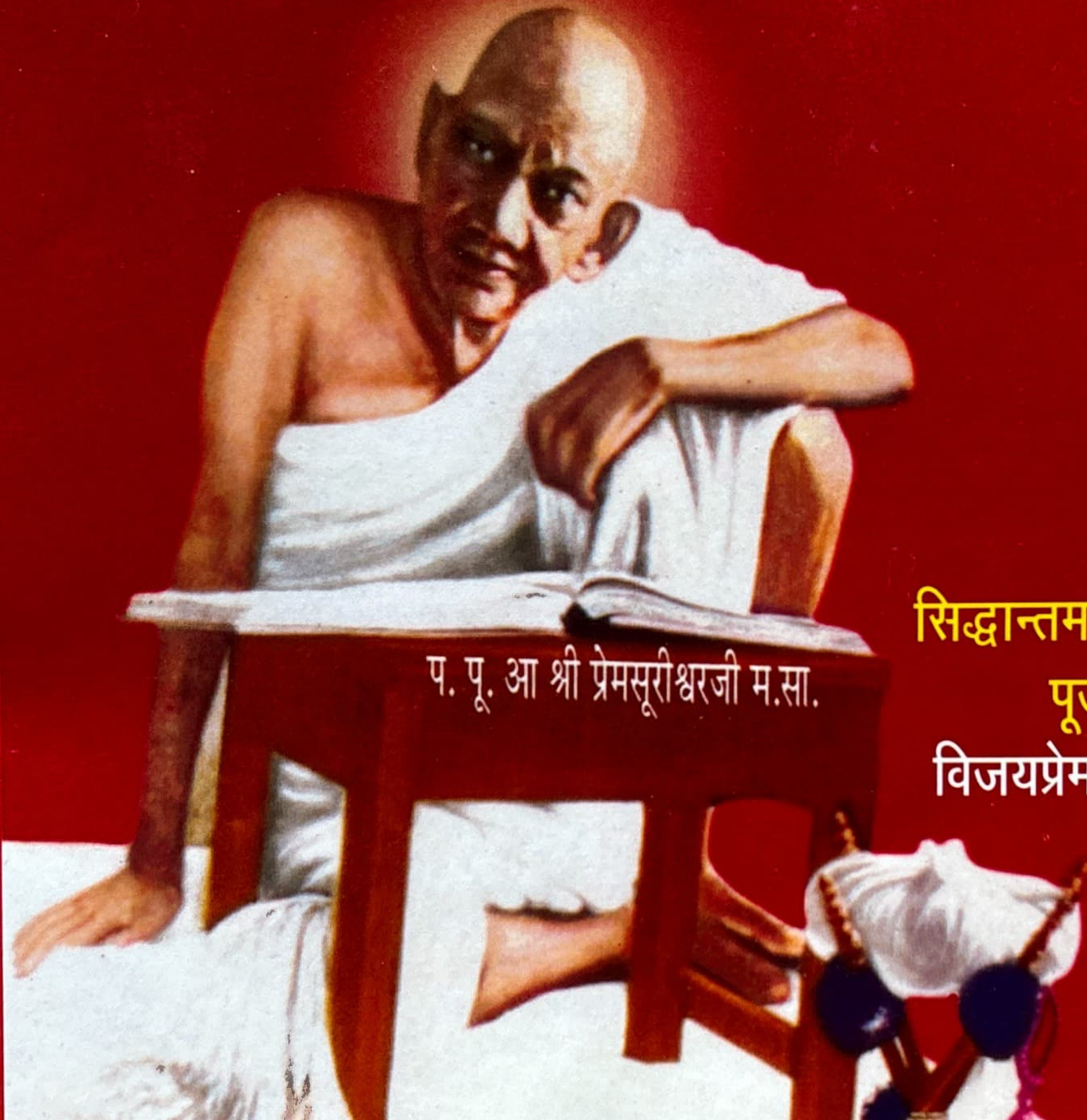

सिद्धान्तमहोदधि सुविशालगच्छाधिपति
पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्
विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराज साहब

परम पूज्य सकलसंघहितचिंतक कलामर्मज्ञ युवाजनोद्धारक आचार्यदेव श्रीमद्
विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज साहब

युगों युगों तक अमर रहेगा गुरू भुवनभानु का नाम

बीसवीं सदी में जिनशासन के गगनमें सूर्य की तरह चमकता हुआ प्रकाशमान व्यक्तित्व था - संघहितचिन्तक, शासन-सेवा के अनेक कार्यों के आद्यप्रणेता, तप-त्याग-तितिक्षामूर्ति आचार्यदेव **श्रीमद् विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.** पूज्यश्री के व्यक्तित्व को संपूर्ण रूप से प्रकट करना तो अत्यन्त कठिन ही नहीं, शायद असंभव भी है। पूज्यश्री के गुणों की आंशिक अभिव्यक्ति के लिए भी ग्रंथो के ग्रंथ भर जायें। चलिए, पूज्य गुरुदेव की जीवन - यात्रा के मुख्य अंशो पर एक नजर करें।

- सांसारिक नाम : कान्तिभाई, माताजी : भूरीबहन, पिताजी : चिमनभाई।
- जन्म : वि.सं. १९६७, चैत्र वद-६, दि. १९-४-१९११, अहमदाबाद, शिक्षा : **G.D.A. - C.A.** समकक्ष।
- दीक्षा : संवत् १९९१ पोष सुद-१२, दि. १६-१२-१९३४, चाणस्मा, छोटेभाई पोपटभाई के साथ।
- बडीदीक्षा : संवत् १९९१, माघ सुद-१०, चाणस्मा, प्रथम शिष्य : पू.मुनिराजश्री **पद्मविजयजी म.सा.** (बाद में पंन्यास)
- गुरूदेवश्री : सिद्धान्तमहोदधि प.पू.आचार्यदेव श्रीमद् **विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.सा.**
- गणिपद : सं. २०१२, फाल्गुन सुद-११, दि. २२-२-१९५६, पूना, पंन्यासपद : स. २०१५, वैशाख सुद-६, दि. २-५-१९५९, सुरेन्द्रनगर
- आचार्यपद : सं. २०२९, मगसर सुद-२, दि. ७-१२-१९७२, अहमदाबाद,
- १०० ओली की पूर्णाहुति : सं. २०२६, आश्विन सुद १५, दि. १४-१०-१९७० कलकत्ता,
- १०८ ओली की पूर्णाहुति : सं. २०३५, फाल्गुन वद-१३, दि. २५-३-१९७९, मुंबई।
- विशिष्टगुण : आजीवन गुरुकुलवास सेवन, संयमशुद्धि, ज्वलंत वैराग्य, परमात्म भक्ति, क्रिया शुद्धि, अप्रमत्तता, ज्ञानमग्नता, तप-त्याग-तितिक्षा, संघ वात्सल्य, श्रमणों का जीवन निर्माण, तीक्ष्ण शास्त्रानुसारिणी प्रज्ञा।
- शासनोपयोगी विशिष्ट कार्य : धार्मिक शिक्षण शिबिरों के द्वारा युवापीढी का उद्धार, विशिष्ट अध्यापन शैली व पदार्थ संग्रह शैली का विकास, तत्त्वज्ञान व महापुरुष-महासतियों के जीवन-चरित्रों को जन-मानस में प्रचलित करने के लिये चित्रों के माध्यम से प्रस्तुति, बाल-दीक्षा प्रतिबंधक बिल का विरोध, कत्लखानेको ताले लगवाये, दिव्यदर्शन साप्ताहिक के माध्यम से जिनवाणी का प्रसार, संघ एकता के लिये जबरदस्त पुरुषार्थ, अनेकान्तवाद के आक्रमणों के सामने संघर्ष, चारित्र-शुद्धि का यज्ञ, अमलनेर में सामूहिक २६ दीक्षा, मलाड में १६ दीक्षा आदि ४०० दीक्षाएँ अपने हाथ से दीं, आयंबिल के तप को विश्व में व्यापक बनाया।
- कलात्मक सर्जन : जैन चित्रावलि, महावीर चरित्र, प्रतिक्रमणसूत्र-चित्र आल्बम, गुजराती - हिन्दी बालपोथी, महापुरुषों के जीवन चरित्रों की १२ व १७ तस्वीरों के दो सेट, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि महाराज के जीवन - चित्रों का सेट, बामणवाडाजी में भगवान महावीर चित्र गेलेरी, पिंडवाडा में पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.सा. के जीवन - चित्र, थाणा-मुनिसुव्रतस्वामी जिनालय में श्रीपाल - मयणा के जीवन - चित्र आदि।
- प्रिय विषय : शास्त्र -स्वाध्याय घोष, साधु-वाचना, अष्टापद पूजा में मग्नता, स्तवनों के रहस्यार्थ की प्राप्ति, देवद्रव्यादि की शुद्धि, चांदनी में लेखन, बिमारी में भी खडे खडे उपयोग-पूर्वक प्रतिक्रमणादि क्रियायें, संयमजीवन की प्रेरणा, शिष्य परिवार से संस्कृत-प्राकृत ग्रंथो का विवेचन करवाना।
- तप साधना : वर्धमान तप की १०८ ओली, छठ्ठ के पारणे छठ्ठ, पर्वतिथीयों में छठ्ठ, उपवास, आयंबिल आदि, फ्रुट-मेवा-मिठाई आदि का आजीवन त्याग।
- चारित्र पर्याय : ५८ वर्ष, आचार्य पद पर्याय : २० वर्ष, कुल आयुष्य : ८२ वर्ष, कुल पुस्तक : ११४ से अधिक।
- स्वहस्त से दीक्षा प्रदान : ४०० से अधिक, स्वहस्त से प्रतिष्ठा : २०, स्वनिश्रा में उपधान : २०, स्वहस्ते अंजनशलाका-१२।
- कुल शिष्य प्रशिष्य आज्ञावर्ति परिवार : ४१५, कालधर्म : सं. २०४९, चैत्र वद-१३, दि. १९-४-१९९३, अहमदाबाद।

अरिहंत भगवान

अपने भगवान

अपने भगवान कौन ?

अरिहंत भगवान । ये तीर्थंकर कहलाते है । ये जिनेश्वर भी कहलाते है । अरिहंत यानी देव आदि के भी पूज्य-पूजन करने योग्य ।

तीर्थंकर यानी विश्व के समस्त जीवों को तारनेवाले धर्मतीर्थ के स्थापक ।

जिनेश्वर यानी राग-द्वेष इत्यादि आत्मिक दोषों को जीतनेवालों में अग्रेसर ।

ये परमात्मा है, परम (श्रेष्ठ) पुरूष हैं, पाताललोक-मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक इन तीनों लोक के नाथ हैं, सुरासुरेन्द्रों से पूजित है ।

श्री आदीश्वर, श्री शांतिनाथ, श्री नेमिनाथ, श्री पार्श्वनाथ, श्री महावीरस्वामी एसे कुल चौबीस तीर्थंकर हो गए हैं । इन चौबीस तीर्थंकरो को चौबीसी कहा जाता है । श्री आदीश्वर आदि के पहले अनन्त चौबीसी हो गई है और भविष्य में भी अनन्त चौबीस होंगे ।

अपने भरतक्षेत्र के उत्तर में महाविदेह क्षेत्र है, ऐसे कुल ५ महाविदेह हैं । वहाँ श्री सीमंधरस्वामी वगैरह २० विहरमान (अभी विचरते) तीर्थंकर देव विद्यमान है । (देखिए सामने चित्र में) चांदी, सोना और रत्नों से बने हुए तीन गढवाले समवसरण में बिराजकर ये धर्म का उपदेश देते है । वहाँ गौतमस्वामी जैसे गणधर और दूसरे मुनिराजों तथा ईन्द्रों, देवों राजाओं तथा अन्य लोग भी आए हुए हैं । वहां नगर और जंगल के पशु भी जाति-बैर भूलकर आए दिखाई देते हैं । सभी प्रभु की वाणी को अपनी अपनी भाषामें सुनते हैं, इसीलिए प्रत्येक उसको समझ शकते हैं ।

अरिहंत भगवान को राग नहीं, द्वेष नहीं, हँसी नहीं, शोक नहीं, हर्ष या उद्वेग (दुःख) कुछ नहीं है । ये वितराग हैं । उन्होंने दीक्षा लेकर, तपस्या कर के, कष्ट सहे । कष्टों से तनिक भी चलित न होते ध्यान मग्न रहकर कर्मों का नाश करके केवलज्ञान (परिपूर्ण ज्ञान) प्राप्त किया । इस प्रकार वे सर्वज्ञ हुए । भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल तीनों कालों को ये सभी जानते हैं । उन्होंने जगत को सत्य तत्त्व की जानकारी दी है, मोक्ष का मार्ग यानी धर्म उन्होंने समझाया है । आत्मा के सच्चे सुख की समझ उन्होंने दी है । (देखिए-सामने ये भगवान का मंदिर है। इसमें उनकी मूर्ति-प्रतिमा है) उनकी पूजा-भक्ति करने से बहुत पुण्य होता है, पाप धुलते हैं । अच्छी गति मिलती है । उनका नाम जपने से भी पुण्य बढता है ।

जैनशासन में परमात्मा होने का, बनने का किसी को खास ठेका नहिं दिया । जो कोई भी अरिहंत की, सिद्ध की, जैनशासन की, आचार्यादि साधुओं की अच्छी तरह से आराधना करते हैं, खूब भक्ति करते हैं अथवा सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की प्रशंसनीय साधना करते हैं, या तो तीर्थ-संघ की असाधारण सेवा-भक्ति करते हैं, सर्व जीवों को तारने की करूणा बुद्धि से उत्तम (शुभ) प्रयत्न करते हैं, विधिपूर्वक लाख नवकारमंत्र गिनते हैं, देवद्रव्य की रक्षा-वृद्धि, शासन प्रभावना करते है, इत्यादि जिनेश्वर देवों के फरमाये शुभ कर्तव्यों से वह उत्तम आत्मा भी तीर्थंकर हो सकते हैं ।

1
2

अपने गुरू और परमेष्ठी

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो
सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवइ मंगलं

अपने गुरू कौन ?

साधु-मुनिराज ये ही सच्चे गुरू हैं, क्योंकि उन्होंने कंचन-कामिनी-माल-मिल्कियत, सगे सम्बन्धी, हिंसामय घरबार आदि संसार-मोह छोडकर दीक्षा ली है । स्थूल या सूक्ष्म (बडे या छोटे) कोई भी जीव को मारना नहीं, थोडा भी असत्य-झूठ बोलना नहीं, मालिक के दिए बिना कुछ भी नहीं लेना, स्त्री का सदा त्याग (ब्रह्मचर्य का पालन करना), फूटी कौडी भी रखनी नहीं (पैसे आदि मालमिल्कियत का सर्वथा त्याग) । एसे पांच महाव्रतों की प्रतिज्ञा लेकर जो जीवनभर ये पांच शील पालते हैं ।

वे कच्चा पानी, अग्नि, हरी वनस्पति, स्त्री, बालिका वगैरह को छूते भी नहीं है । मठ-मकान-झोपडी भी नहीं रखते । भोजन खुद नहीं पकाते, अपने लिए दूसरों के पास से भी नहीं कराते, अपने लिए तैयार किया गया भोजन नहीं लेते । वे गृहस्थों के घर-घर से थोडा थोडा पकाया हुआ अन्न माँगकर भिक्षावृत्ति से अपना निर्वाह चलाते हैं (जीवन निर्वाह करते हैं ।) रात को पानी भी नहीं लेते ।

वे नंगे पांव चलकर विहार करते करते गाँव गाँव में जाते हैं । दिन-रात धर्म-क्रिया करना, शास्त्र पढना, साथ में रहे हुए ग्लान, तपस्वी या वृद्ध साधुओं की सेवा करनी, तपश्चर्या करनी ये उनका निरंतर धर्मसाधना की सौरभ से सभर साधुजीवन ! (देखिए चित्र-१)

वे लोगों को सिर्फ धर्म सिखलाते-समझाते हैं । तीर्थंकर भगवान के कहे हुए तत्त्व-दया, दान, व्रत, नियम, त्याग, तपस्या, देव-गुरु की भक्ति वगैरह का उपदेश देते हैं ।

ये गुरु तीन प्रकार के हैं - सबसे बडे आचार्य ये शासन की सेवा-रक्षा करते हैं । तीर्थंकर प्रभु की अनुपस्थिति में वे शासन के राजा गिने जाते हैं ।

दूसरे उपाध्याय - ये साधुओं को शास्त्र पढाते हैं और तीसरे साधु-जो कि आचार्य-उपाध्याय भगवंतो ने सिखाई हुई संयमजीवन-मोक्षमार्ग की साधना करते हैं । ये तीनों ही गुरूदेव कर्मों का क्षय (नाश) करके मोक्ष प्राप्त करते हैं, तब सिद्ध भगवान बनते हैं ।

(१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) आचार्य (४) उपाध्याय और (५) साधु । ये पाँच परमेष्ठी कहलाते हैं (उनको परमेष्ठी कहकर भी बुलाया जाता है) । उनको नमस्कार करने का सूत्र नवकार मंत्र-नमस्कार महामंत्र है । यदि एकबार नवकार ध्यान से (शुभ भाव से, एकाग्रता से) गिना जाये तो पाप कर्म-जो बहुत ही बडे समूह में पडे हुए हैं (७० करोड, X १ करोड सागरोपम की उत्कृष्ट स्थितिवाले से लेकर के थोडे समय के) वह भी वापिस अनन्त, उसमें से ५०० सागरोपम वर्ष जितने कर्म टूट जाते हैं, (१ सागरोपम अर्थात् असंख्य वर्ष) एक छूटी नवकारवाली अर्थात् १२ नवकार गिनते छह हजार सागरोपम टूटते हैं और एक बँधी (पक्की) नवकारवाली अर्थात् १०८ नवकार गिनने से ५४ हजार सागरोपम जितने कर्म टूटते हैं ।

नवकार ध्यान से गिनने के लिए उपर के पद पढकर गिनना चाहिए ।

धर्म

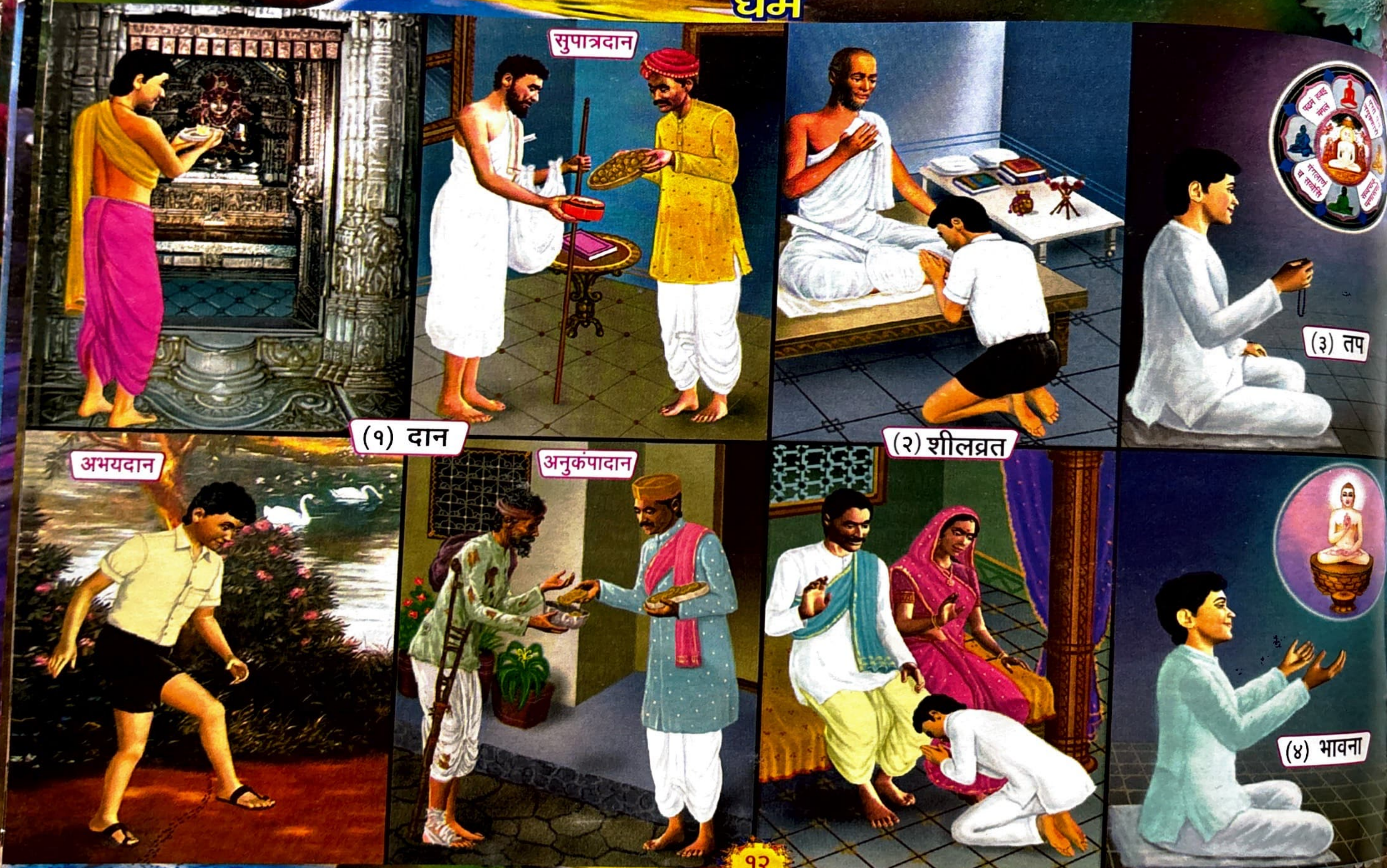

धर्म

धर्म करते हैं तो बहुत सुख मिलता हैं। पाप करते हैं तो बहुत दुःख भोगने पडते हैं। पाप करने से कुत्ते, बिल्ली, कीडे, मकोडे, होना पडता है, नरक में राक्षस के हाथ से बहुत पीडित होना पडता है। जब कि धर्म करने से आत्मा का विकास होता है, विमान में देव हो सकते हैं और मोक्ष मिलता है। फिर कोई दुःख ही नहीं, सुख और केवल सुख।

सर्वज्ञ वीतराग भगवान ने कहा है, वही सच्चा धर्म। उन्होंने **चार प्रकार के धर्म बताये हैं - दान-शील-तप और भाव।**

दान धर्म में : (१) भगवान की पूजा-भक्ति करनी - दूध (जल), चंदन, केसर, फूल, धूप, घी का दिया, चावल (अक्षत), फल और नैवेद्य (मिठाई, बतासे, साकर ईत्यादि) अर्पण करना।

(२) साधु-मुनिराज को बहेराना : भोजन, वस्त्र, दवाई आदि देना।

(३) भिखारी-लूले-लंगडे-अंधे आदि को खाना-पीना, ठंडी में ओढने के लिए कपडे इत्यादि देना।

(४) कीडे-मकोडे इत्यादि कोई भी जीव को मारना नहीं - अभयदान देना। इसके लिए नीचे देखकर चलना।

(५) धर्म-कार्यों में (मंदिर-उपाश्रय बनानेमें), साधर्मिक भक्ति, शिबिर-पाठशाला आदि में धन देना।

(६) दूसरों को धार्मिक ज्ञान देना, उसमें सहायता करना।

शील धर्म में : ब्रह्मचर्य, सदाचार, व्रत-नियम (बाधा) सामायिक, सुदेव-सुगुरू-सुधर्म पर अटल श्रद्धा, माता-पिता, विद्यागुरू, देव गुरू, बडे आदि का विनय करना वगैरह।

तप धर्म में : नवकारशी (सूर्योदय से ४८ मिनिट बाद मुट्ठी बन्ध करके नवकार गिनकर भोजन या नाश्ता करना), पोरसि, बियासणा, एकासणा, आयंबिल, उपवास आदि शक्ति के अनुसार करना। उनोदरी-भूख हो उससे कम खाना, मन को मलिन करे वैसी विगई-दूध, घी, मिठाई वगैरह में से एकाध त्यागना। धर्म-क्रिया में समता से कष्ट सहन करना, धार्मिक अध्ययन (स्वाध्याय) करना। पापों का गुरू समक्ष स्वीकार, संघ की सेवा, ध्यान इन सभी का तप में समावेश होता है। उसमें से हो सके उतना करना।

भाव धर्म में : अच्छी भावना रखना, जैसे कि, 'ओह ! यह संसार असार है, काया - माया सभी नाशवान हैं, धर्म ही सार है। अरिहंत आदि परमेष्ठी सच्चे तारक हैं, सर्व जीव मेरे मित्र हैं, सभी पाप से बचें, सभी सुखी हों, सभी जीव मोक्ष प्राप्त करें।' 'में आत्मा हूँ, काया आदि सभी मुझसे भिन्न हैं।'

अहिंसा, संयम और तप - ये मुख्य धर्म हैं। धर्म का पाया-मूल सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व अर्थात् अरिहंत यही मुझे मान्य देव, इनके वचन पर दृढ श्रद्धा तथा सच्चे साधु ही गुरू तरीके मान्य और उन पर श्रद्धा-प्रेम रखना।

दिनचर्या

श्रावकों की दिनचर्या

सवेरे जल्दी जागना । जागते ही 'नमो अरिहंताणं' बोलना । बिस्तर छोडकर नीचे बैठकर शांत चित्त से ७-८ नवकार गिनना । फिर विचार करना कि ' मैं कौन हूँ ? **मैं जैन मनुष्य-दूसरे जीवों से बहुत ज्यादा विकसित, इसलिए मुझे शुभकार्य रुप धर्म ही करना चाहिए** । उसके लिए अभी अच्छा अवसर है।'

ऊठ करके माता-पिता के चरण-स्पर्श करना । फिर प्रतिक्रमण, वह नहीं हो सके तो सामायिक करनी । यदि वह भी नहीं हो सके तो 'सकल तीर्थ' सूत्र बोलकर सर्व तीर्थों को वंदन करें और 'भरहेसर' सज्झाय बोलकर महान आत्माओं को याद करें । रात्रि के पापों के लिए मिच्छामि दुक्कडं कहना । बादमें कम-से-कम नवकारशी का पच्चखाण धारें । पर्व तिथि हो तब बियासणा, एकासणा, आयंबिल आदि शक्ति अनुसार धारें ।

मन्दिर में भगवान के दर्शन करने जाना । वहाँ प्रभु के गुणों को और उपकारों को याद करें । उपाश्रय जाकर गुरुमहाराज को नमन करें । सुखशाता पूछनी । भात-पानी का लाभ देने की बिनती करनी, निश्चय किया हुआ पच्चक्खाण करना ।

सूर्योदय से ४८ मिनिट बाद नवकारशी का पच्चखाण पार सकते हैं । १/४ दिन गुजरने पर पोरिसी, १/४ + १/८ दिन जाए तब साढपोरिसी, १/२ दिन जाए तब पुरिमुड्ढ पच्चक्खाण पार सकते हैं ।

नवकारशी से नरकगति लायक १०० वर्ष के पाप टूटते हैं । पोरिसी से १००० वर्ष के, साढपोरिसी से दस हजार वर्ष के, पुरिमुड्ढ अथवा बियासणा से लाख वर्ष के पाप टूटते है ।

स्नान करके स्वच्छ अलग कपडे पहनकर हंमेशा भगवान की पूजा करें । पूजा (भक्ति) किये बिना भोजन नहीं किया जाता । पूजा के लिए हो सके तो पूजन की सामग्री (दूध, चन्दन, केसर, धूप, फूल, दीपक, बरक, आंगी की अन्य सामग्री, चावल, फल, नैवेद्य आदि) घर से ले जानी चाहिए ।

गुरु भगवंत गाँव में बिराजमान हो तो गुरु महाराज के पास व्याख्यान-उपदेश सुनें । प्रभु की वाणी सुनने से सच्ची समझ मिलती है, शुभ-भावना बढती है, जीवन सुधरता जाता है ।

शाम को सूर्यास्त के पूर्व हि भोजन कर लेना चाहिये । **श्रावकों को महापापकारी रात्रिभोजन करना उचित नहीं है** । भोजन के पश्चात् मन्दिर में दर्शन करें । धूप-पूजा, आरती उतारें । शाम को प्रतिक्रमण करना । फिर धार्मिक पुस्तकें पढना । पाठशाला में हररोज जाना । **कभी भी झूँठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करनी, निंदा नहीं करनी, बीडी-सिगारेट नहीं पीना, जूआ नहीं खेलना, झगडा नहीं करना, जीवदया रखना, परोपकार करते रहना । पापप्रवृतियों का त्याग और धर्मसाधना की वृद्धि से जीवन सफल होता है ।**

मंदिर विधि

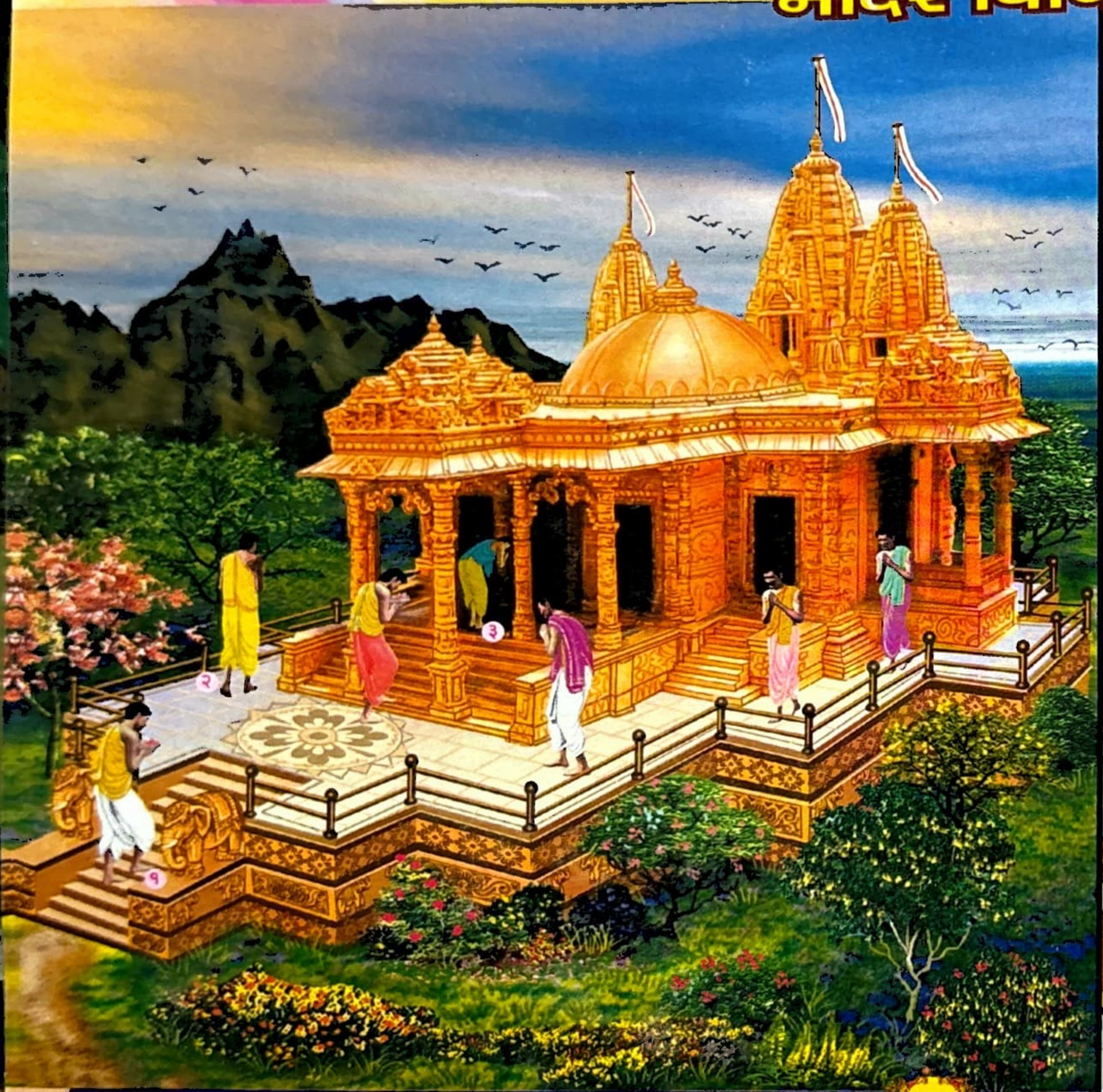

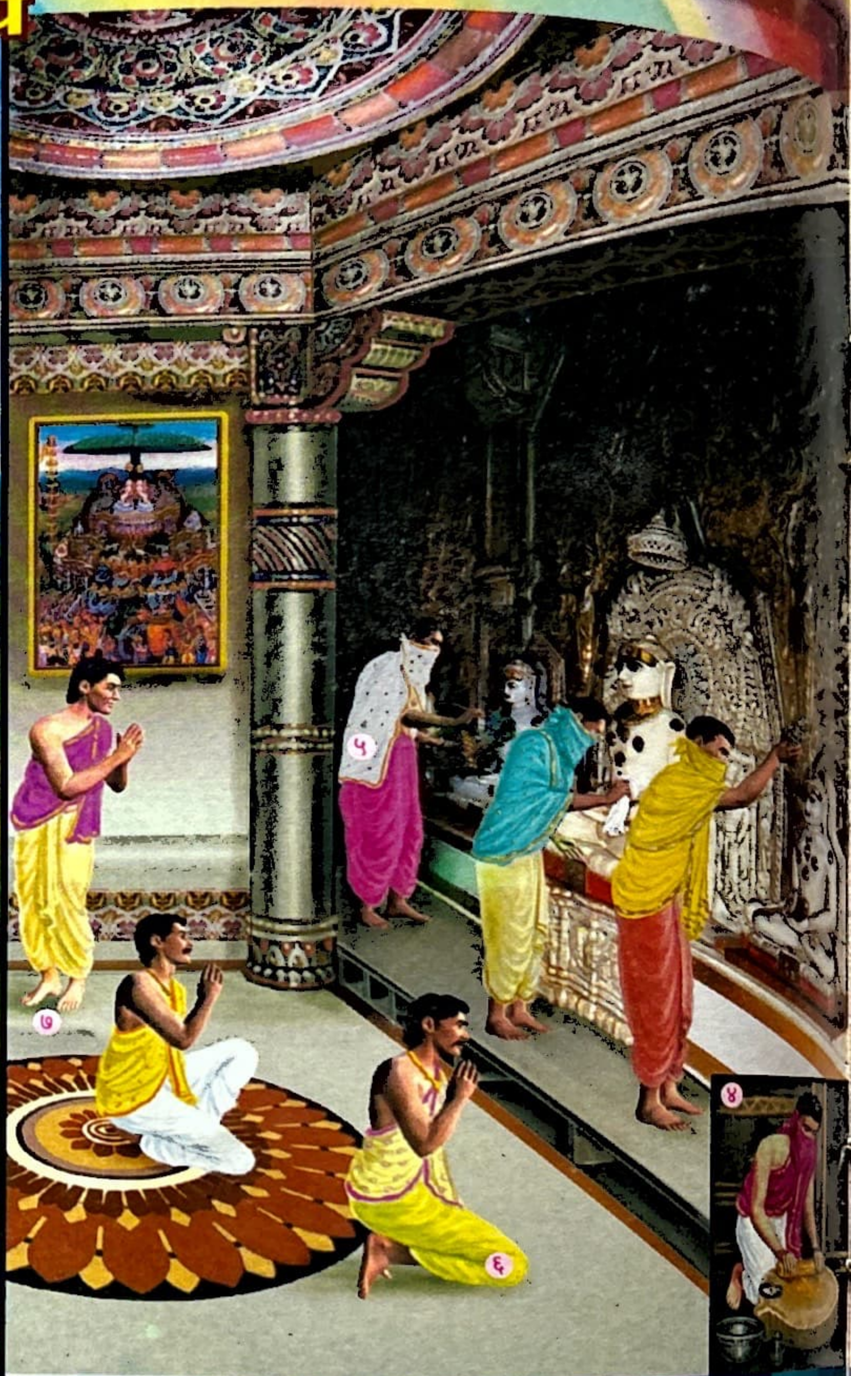

जिनमन्दिर (दहेरासर) विधि

अपने वीतराग भगवन्त की दिव्य और भव्य प्रतिमाएँ जहां हो, वह जिनमन्दिर कहलाता है । प्रभुकी प्रतिमा प्रभु के स्वरुप की याद दिलाती है । **हरेक जैन को हररोज जिनमन्दिर जाना चाहिये ।** जिनमन्दिर में जाने की चाह होते ही एक उपवास जितना लाभ मिलता है । इसलिए खूब भावोल्लास के साथ मन्दिर जाना । चलते हुए कीडी वगैरह जीव नहीं मरे इसके लिए नीचे देखकर चलना । **जिनालय के शिखर के दर्शन होते ही दो हाथ जोडकर थोडा सिर झुकाकर 'नमो जिणाणं' कहना ।** इसी प्रकार कभी भी मन्दिर के पास से निकलें तब इस प्रकार 'नमो जिणाणं' बोलना ।

जिनमन्दिर में प्रवेश करते संसार के कार्य एवं उसकी विचारणा बन्द करने कि लिए 'निसीहि' कहना । फिर प्रभु के चारों और प्रभु की दाहिनी ओर से तीन प्रदक्षिणा (प्रभुजी को बीच में रखकर गोलाकार में स्तुति बोलते फिरना वह) देना, इससे संसार का भ्रमण मिटता है ।

फिर प्रभुजी के सामने आधे झुककर 'नमो जिणाणं' कहते भगवान का मुँह देखते-देखते प्रणाम करना । फिर गद्‌गद (प्रभुभक्ति से भरपूर आर्द्र) स्वर से अच्छी प्रभु-स्तुति बोलना और भावना करना कि 'ओह ! कल्पवृक्ष को भी मात कर दे ऐसा संसार के दुःखों का नाश करनेवाला कैसा सुन्दर प्रभुदर्शन-वंदन करने का सद्‌भाग्य मुझे मिला है ।'

फिर वासक्षेप-धूप-दीप-साथिया करके चैत्यवंदन करना ।

स्नान करके पूजा के कपडे पहनकर गये हो तब स्तुति करने के बाद खेस के अंचल से मुखकोश बाँध करके केसर घिस लेना । तिलक (भाइयों को बदाम के आकार का टीका तथा बहनों को गोल टीका) करके (प्रभुपूजा के अलावा के कार्यों का त्याग करने के रुप में) दूसरी 'निसीहि' कहकर गर्भागार में प्रवेश करना ।

प्रभु की प्रतिमा पर मोर के पंखो-पींछियों से बना हुआ कोमल ब्रश फेरना, जिससे जीव-जन्तु दूर हो जाएँ । फिर बडा कपडा (केसरपोथो-केसर पोंने का कपडा) पानी में भिगोकर प्रतिमा के उपर से बासी केसर उतार लेना । कोने में से केसर नहीं निकले तो धीरे से वालाकूँची से साफ करना । फिर कलश को दोनों हाथों से पकडकर प्रक्षाल (अभिषेक) करना । फिर (मुलायम वस्त्रों के बने हुए) तीन अंग पोंछने के कपडों से प्रभु-प्रतिमा को स्वच्छ-सूखी (कोरी) करना ।

फिर प्रभुजी को चंदन-बरास विलेपन करना । केसर-चंदन से नौ (नव) अँग पर तिलक करना । वरक हो तो चिपकाना । बादला-रेशम-पुष्प-सोना-चांदी-हीरें आदि के अलंकार आदि से अंगरचना (प्रतिमाजी की शोभा) की जा सकती है । पुष्प चढाना । फिर गर्भागार के बाहर आकर, प्रभुजी के सामने रहकर, उनका जन्माभिषेक उत्सव, राज्यादि में भी वैराग्यमय अवस्था, दीक्षाजीवन, तपस्या, तीर्थंकर अवस्था वगैरह भाना । धूप-दीपक करना । चामर (चँवर), पंखा, दर्पण आदि धरना ।

फिर चावल (अक्षत) से स्वस्तिक करके, फल नैवेद्य आदि अर्पण करके भावपूजा से भिन्न कार्यों के त्यागरुप तीसरी 'निसीहि' कहकर चैत्यवंदन करना । घण्टनाद करना ।

२
मदिरा
४
मक्खन
५
रात्रिभोजन
१
अभक्ष्य
३
मधु
द्विदल
दो रात बीते
दही-छाछ
६
बासि-आदि
कंदमूल
मधु

सात व्यसन और अभक्ष्य त्याग

(१) द्यूत (२) मांसाहार (३) शराब (४) वेश्यागमन (५) शिकार (६) चोरी और (७) परस्त्रीगमन -ये ७ व्यसन (अशुभ कार्य) महापापकर्म बंधानेवाले, नरक में ले जानेवाले हैं। जैनों को तो ये सर्व बाधा और नियम से सर्वथा बन्ध होने चाहिए। **नियम के बिना (पाप नहीं करने पर भी) पापकर्म बँधते जाते हैं।**

जैन से अभक्ष्य भी नहीं खाया जा सकता क्योंकि इसमें सूक्ष्म और त्रस (हिलते-चलते) जीव बहुत होते हैं। ये खाने से बहुत पाप लगता है, बुद्धि बिगडती (मलिन होती) है, शुभ-कर्तव्य नहीं हो सकते। परिणाम स्वरुप इस भव में और परलोक में भी बहुत दुःखी-दुःखी होना पडता है। **मांस, शराब, शहद और मक्खन** (छाछ में से बाहर निकालने के बाद का मक्खन) ये चारों अभक्ष्य गिने जाते हैं। **कन्द-मूल, काई (सिवार) फफुँदी इत्यादि भी अभक्ष्य हैं**, क्योंकि इसमें अनन्त जीव होते हैं। इसके अवाला **बासी भोजन, अचार (पानी के अन्शवाला आचार), द्विदल के साथ कच्चा दही-छाछ वगैरह, दो रात के बाद का दही-छाछ तथा बरफ, आइस्क्रीम, कुलफी, कोल्ड्रींक्स** वगैरह भी अभक्ष्य गिने जाते हैं। **रात्रि भोजन भी नही कर सकते।**

(देखिए-चित्र-१) उसमें मांस खानेवाला बैल बना है और कसाई द्वारा काटा जा रहा है।

(चित्र-२) मनुष्य शराब पीकर गटरमें पडा है, उसके खुले हुए मुँह में कुत्ता पेशाब करता है।

(चित्र-३) शहद के (छत्ते) पर असंख्य जन्तु चिपक कर मरते हैं। मक्खियाँ विष्टा वगैरह के अपवित्र पुद्‌गल लाकर इसमें भरती है। शहद निकालनेवाला धूनी धधका कर शहद के छत्ते को बोरे (बडे थैले) में रखता है, इसमें बहुत सारी मक्खियाँ मरती है।

(चित्र-४) में-मक्खन में उसी वर्ण के (रंग के) असंख्य जीव सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) द्वारा दर्शाये हैं।

(चित्र-५) में रात को खानेवाले कौआ, उल्लु, बिल्ली, चमगादड वगैरह होते हैं। होटल में अभक्ष्य होता है, अभक्ष्य की मिलावट हो सकती है-इसलिए **होटल का, लारी का, धाबे का भी नहीं खा सकते। फास्टफुड** वगैरह भी नहीं खाना चाहिए।

(चित्र-६) में-गर्म नहीं किया हुआ दही, छाछ या दुध, द्विदल के साथ मिलने से तत्काल असंख्य सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार बासी नरमपूरी, रोटी, खोया वगैरह में तथा बराबर धूप में तपाये बिना के आचार में और दो रात से ज्यादा के दहीं-छाछ में भी असंख्य जीव उत्पन्न होते है। इसलिए ये सभी अभक्ष्य-भक्षण नहीं करने योग्य बनते है। तथा **कन्दमूल, प्याज, आलू, अदरक, लहसुन, मूली, गाजर, शकरकन्द वगैरह में भी कण-कण में अनन्त जीव हैं।** बेंगन आदि भी अभक्ष्य है। नमी से खाखरा, पापड, वगैरह में फफुँदी आती है वह भी अनन्तकाय है। अतः अभक्ष्य है।

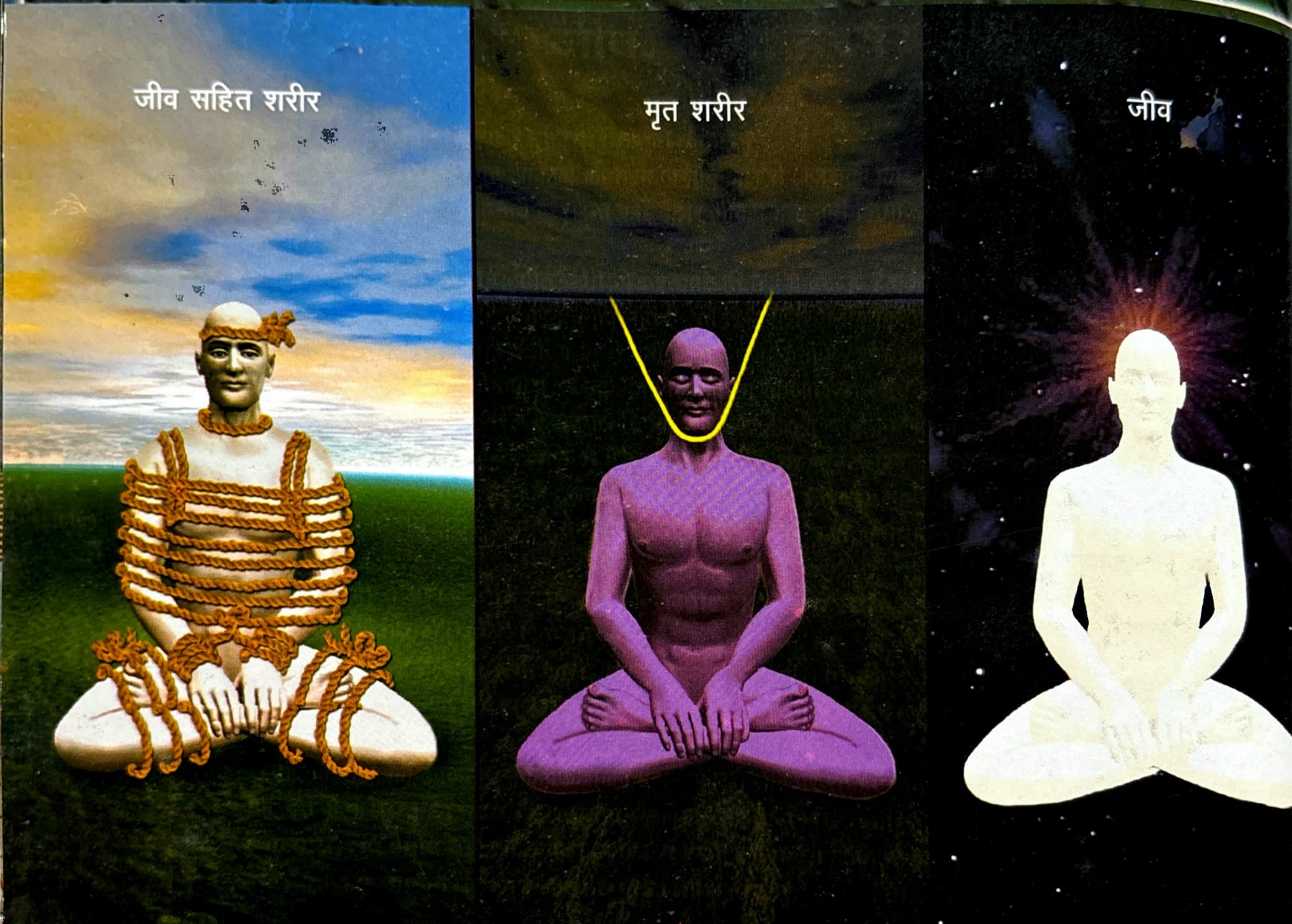
जीव सहित शरीर
मृत शरीर
जीव

शरीर और जीव

हम कौन हैं ? हम जैन हें । 'जैन यानी' ? **जिनेश्वर भगवान को मानते हैं वह जैन । उनका कहा हुआ सब (मनपसन्द थोडा नहीं, सब कुछ) मानते हैं वह जैन ।** हम जैन हैं, तब 'हम' अर्थात् ओह ! 'हम' शरीर नहीं तो जड है । हम अर्थात् जीव-आत्मा-चेतन । शरीर को ज्ञान नहीं होता है, जीव को ज्ञान हो सकता है ।

हमें सुख-दुःख होता है, ज्ञान होता है, समझ पडती हैं, हमें गुस्सा आता है, अभिमान होता है, क्षमा-नम्रता रखते हैं, हमें इच्छा होती है, विचार आते हैं, - ये सब किसको होते हैं ? आत्मा को, शरीर को नहीं । अगर शरीर को यह सब होते हो तो मुर्दे को भी होना चाहिए लेकिन वहां कोइ संवेदना नहीं होती है । क्योंकि वहां शरीर है, आत्मा नहीं ।

इसमें से कितने ही गत जन्मों के कर्म और संस्कार के कारण होते है । इसलिए समान परिस्थितियों में भी हरएक जीव के सुख-दुःख, क्रोध, क्षमा वगैरह में भेद पडता है - अलग-अलग प्रकार के होते है । शरीर तो पुद्‌गल-मिट्टी का बना हुआ है । उसको इसमें से कुछ नहीं होता है । उसको कोइ सुख नहीं, दुःख नहीं, ज्ञान-इच्छा-भावना आदि कुछ नहीं होता है । मुर्दे को क्या इसमें से कुछ भी होता है ? इसलिए शरीर स्वयं जीव नहीं होता है । हमें सुख-दुःख आदि होते हैं इसलिए हम जीव हैं, शरीर में कैद हुई आत्मा हैं (पिंजर में कैद हुए पक्षी की तरह) ।

जीव को आँख से देखना होता है तो देखता है, आँख अपने आप नहीं देखती । जीव स्वयं विचारे तो हाथ, पाँव हिलाता है या शरीर को गतिमान करता है, अन्यथा यह बिचारा पडा रहता है । इसलिए **जीव शरीर से स्वतन्त्र व्यक्ति है, स्वतन्त्र है ।**

शरीर तो हर भव में नया बना है । जीव को कर्मसत्ता ने भूत की तरह चिपकाया है परन्तु जीव तो अनन्तकाल से इस संसार में भटकता आया है । इसलिए किसी को पूर्वजन्म याद आता है । अपना जीव पेड-पौधे, पानी, वायु, कीडे-मकौडे, पशु-पक्षी इत्यादि अवतारों में अनन्त बार जाकर के आया है, अर्थात् वैसा बना है ।

यहाँ हमें मनुष्य शरीर मिला है, यह भी सभी मनुष्यों की तरह छूट जानेवाला है (अर्थात् हम भी मर जानेवाले हैं) और फिर जीव को परभव में कहीं जाना पडता है । इसलिए इस शरीर का, इन्द्रियों का मोह नहीं रखना चाहिए । उसकी टापटीप सजावट मजे से नहीं करनी चाहिए । इसके खातिर पाप नहीं करना चाहिए । **पाप करने से जीव को दुर्गति में जाना पडता है ।** पाप का फल-दुःख अवश्य भोगना पडता है ।

जीव के षट्स्थान

जीव के छह स्थान

तीर्थंकर भगवान कहते है।

(१) शरीर जीव नहीं है। शरीर से बिलकुल भिन्न जीव एक स्वतन्त्र व्यक्ति (तत्त्व) है। उदाहरण के तौर पर किसी के शरीर में भूत होता है उस प्रकार जीव शरीर में कैद बना हुआ है। जीव हाथ को ऊंचा करता है तभी वह ऊंचा होता है। (देखिये चित्र-१) एक हाथ खडा हुआ है, जब कि दूसरा हाथ बेचारा ऐसे ही पडा हुआ है।

(२) जीव आज का नहीं, सदा जीवित है, नित्य है। पेड-पौधे, पानी, कीडे-मकौडे, पशु-पक्षी वगैरह अनन्त शरीर में कैद होता हुआ और वहां से छूटता जीव आज यहाँ आया है। वापिस यहाँ से चला जानेवाला है.... कहाँ ? कर्म ले जाये वहाँ...(चित्र-२)

(३) शरीर में कैद होने का कारण - जीव ने वैसे कर्म किये हैं। जीव अच्छे-बुरे कर्मों का कर्ता है। हिंसा, असत्य, धनसंग्रह, आरम्भ-समारम्भ-वगैरह पाप करके कर्म बाँधता है। जब तक कर्मबंधन चालु है तब तक संसार में भटकने का क्रम चालु ही रहनेवाला है। (चित्र-३)

(४) जीव कर्म का भोक्ता भी है। अपने किये हुए कर्म का फल जीव को स्वयं ही भोगना पडता है। स्वयं को सुख-दुःख स्वयं ही के कर्म से मिलता है। पुण्य कर्म से सुख मिलता है और पाप-कर्म से दुःख मिलता है। पुण्य कर्म को भोगने मनुष्यलोक या स्वर्ग में और पापकर्म को भोगने तिर्यंच या नरक में जाना पडता है। (चित्र-४)

(५) कर्म के बन्धन से हमेश के लिए छुटकारा भी हो सकता है। जैसे कि जेल आदि में बेडी के बंधन से बँधा हुआ कभी हमेशा के लिए मुक्त हो सकता है। सर्व कर्मों का सर्वथा क्षय हो तो अवश्य मोक्ष मिल सकता है। फिर कभी भी कर्म नहीं लगते हैं। संसार में भटकना नहीं पडता है। देव-नरक-मनुष्य-तिर्यंच आदि चारगति में से एक में भी जन्म-मरणादि दुःख भोगने नहीं पडते है। (चित्र-५)

(६) मोक्ष : हंमेशा के लिए संसार से छूटकारा और अनन्त ज्ञान-दर्शन, अनन्त आनन्द से भरपूर भरा हुआ। ऐसा मोक्ष प्राप्त करने के लिए सभी ही कर्मों का नाश करना चाहिए।

उसका उपाय क्या है ?

जिन कारणों से कर्मों का बन्धन होता है उनसे विपरीत कारणों से अर्थात् जिनभक्ति, तपस्या, व्रत, नियम, दान, सदाचार, शास्त्रश्रवण, अहिंसा, सत्य, नीति, सामायिक, प्रतिक्रमण, चारित्रपालन, पाप प्रायश्चित्त आदि से कर्म टूटते हैं।

ये छह सम्यक्त्व के स्थान कहलाते है। (१) आत्मा है, (२) नित्य है, (३) कर्म का कर्ता है, (४) कर्म का भोक्ता है, (५) उसका मोक्ष है, (६) मोक्ष का उपाय है।

एकेन्द्रिय-१
ते
अ
पृ
प्रत्येक वनस्पतिकाय
अपकाय
वायुकाय
तेजसकाय
पृ
वनस्पतिकाय
द्वीन्द्रिय २
अलसियां
जौंक
चंदनक
शंख
कोडी
सीप
त्रीन्द्रिय ३
ईन्द्रगोप
इयल
खटमल
गोकिट
सफेद जू
दीमक
चींटी
मकोडा
टिड्डी
चतुरिन्द्रिय ४
मकडी
बीच्छू
मक्खी
तीतली
भवरा
खडमकडी
मच्छर
बग
नभचरतिर्यंच
पंचेन्द्रिय ५
स्थलचर
जलचर
देव
मनुष्य
नारकी

जीव कितने प्रकार के होते है ?

जीव दो प्रकार के होते है ।

(१) संसारी और (२) मुक्त (मोक्ष के)।

संसारी अर्थात् चार गति में संसरण (भ्रमण) करने वाले, कर्म से बँधे हुए, देह में कैद हुए । **मुक्त** अर्थात् संसार से छूटे हुए-कर्म और शरीर बिना के ।

संसारी जीव दो प्रकार के हैं - (१) स्थावर और (२) त्रस ।

स्थावर यानी स्थिर- जो अपने आप अपनी काया को जरा भी हिला-डुला नहीं सकते है । उदाहरण के तौर पर पेड-पौधों के जीव ।

त्रस यानी उनसे विपरीत - स्वेच्छा से हिल-डुल सकते हैं वे । उदाहरण के तौर पर कीडी, मकोडी, मच्छर आदि ।

स्थावर जीवों में सिर्फ एक ही स्पर्शन इन्द्रियवाला (सिर्फ चमडी ही) शरीर होता है ।

त्रस जीवों को एक से अधिक यानी दो से पाँच इन्द्रियोंवाला शरीर होता है । इसमें कौन-सी-एक-एक इन्द्रिय बढती है उसका क्रम समझने के लिए अपनी जीभ से ऊपर कान तक देखिए । बेइन्द्रिय को चमडी + जीभ (स्पर्शन+रसन), तेइन्द्रिय को इसमें नाक-घ्राण) ज्यादा, चउरिन्द्रिय को आँख (चक्षु) अधिक, पंचेन्द्रिय को कान (श्रोत्र) ज्यादा ।

एकेन्द्रिय स्थावर जीव के पाँच प्रकार -

(१) **पृथ्वीकाय** - (मिट्टी, पत्थर, धातु, रत्न आदि) (२) **अप्काय** - (पानी, बरफ, बाष्प वगैरह) (३) **तेऊकाय**- (अग्नि, बिजली, दिए का प्रकाश आदि) (४) **वायुकाय** - (हवा, पवन,पंखा, ए.सी.की ठन्डी हवा आदि)

(५) **वनस्पतिकाय** - (पेड, पान, सब्जी, फल, फूल, काई बगैरह) ये सब एकेन्द्रिय है ।

बेइन्द्रिय - कोडी, शंख, केंचुआ, जोंक, कृमि आदि । **तेइन्द्रिय** - कीडी, खटमल, मकोडा, दीमक, कीडा, घुन इत्यादि ।

चतुरिन्द्रिय - भँवरा, डाँस, मच्छर, मक्खी, तीड, बिच्छु इत्यादि । **पंचेन्द्रिय** - नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव ।

नरक - बहुत पाप कर्म इकट्ठे होने से राक्षसों के (परमाधामी के) हाथ से सतत जहाँ कष्ट भुगतने पडते है ।

तिर्यंच तीन प्रकार के - जलचर, स्थलचर, नभचर ।

जलचर - पानी में जीनेवाले - मछली, मगर, वगैरह ।

स्थलचर - जमीन पर फिरनेवाले - छिपकली, साँप, बाघ-सिंह वगैरह जंगली पशु और गाय-कुत्ते वगैरह शहरी पशु ।

नभचर - आकाश में उडनेवाले - तोता, कबूतर, चिडिया, मोर, चमगादड ।

मनुष्य - अपने जैसे ।

देव - बहुत पुण्यकर्म इकट्ठे हो तब हमारे ऊपर देवलोक में सुख की सामग्री से भरपुर भव मिले वह ।

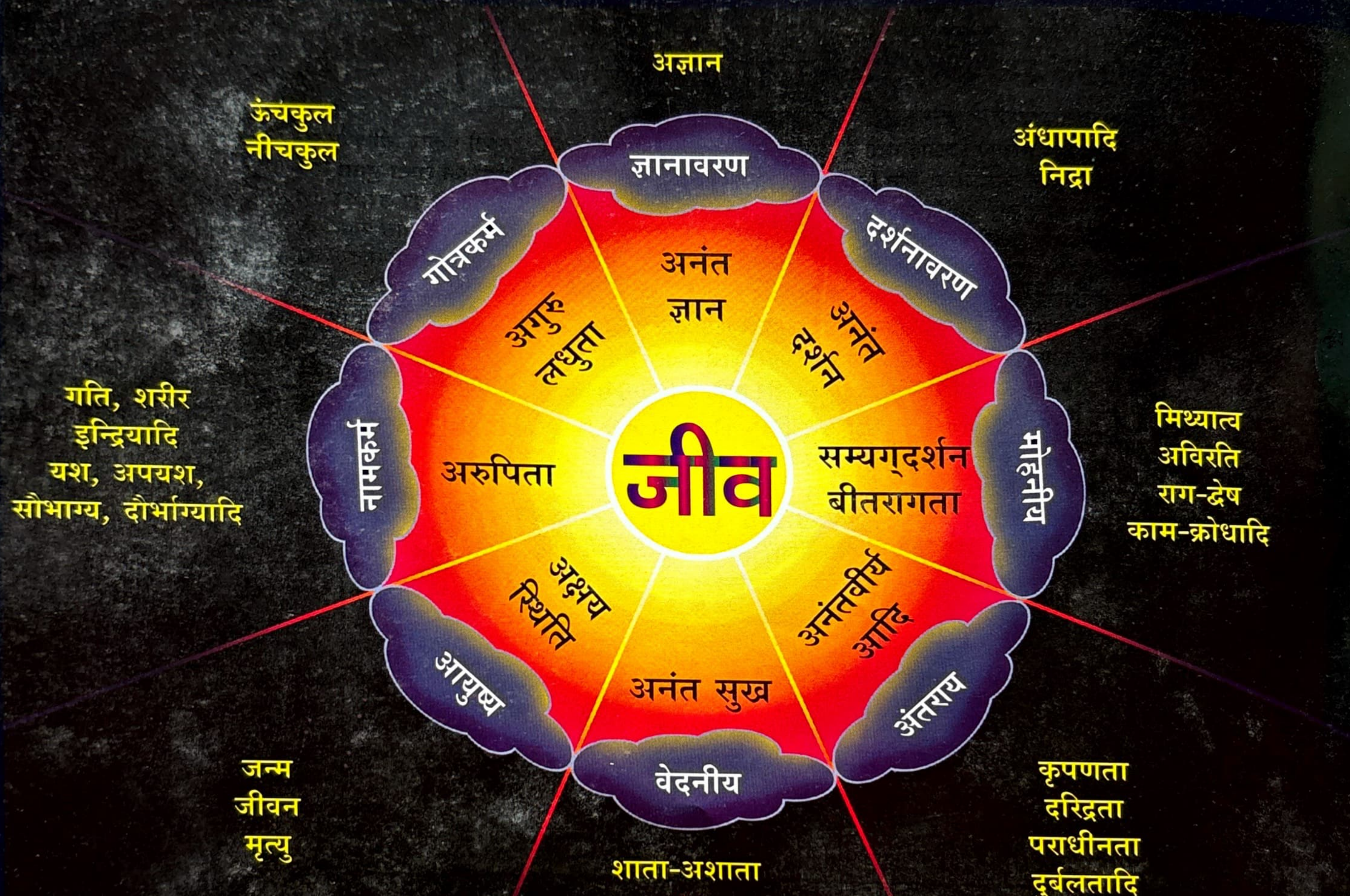
अज्ञान
ऊंचकुल
नीचकुल
अंधापादि
निद्रा
ज्ञानावरण
दर्शनावरण
मोहनीय
अंतराय
वेदनीय
आयुष्य
नामकर्म
गोत्रकर्म
अनंत ज्ञान
अनंत दर्शन
सम्यग्दर्शन
बीतरागता
अनंतवीर्य आदि
अनंत सुख
अक्षय स्थिति
अरुपिता
अगुरु लघुता
जीव
गति, शरीर
इन्द्रियादि
यश, अपयश,
सौभाग्य, दौर्भाग्यादि
मिथ्यात्व
अविरति
राग-द्वेष
काम-क्रोधादि
जन्म
जीवन
मृत्यु
शाता-अशाता
कृपणता
दरिद्रता
पराधीनता
दुर्बलतादि

जीव का स्वरुप (असली और नकली)

तँाबे में मिला हुआ सोना हलका दिखाई देता है, फिर भी सोना स्वयं अन्दर शुद्ध है। उसी प्रकार **जीव स्वयं अन्दर में शुद्ध होने पर भी जड कर्म-रज (कर्म का कूडा) उसमें मिल जाने से मलिन बना हुआ है।** उसके असली स्वरुप में अनन्तज्ञान आदि गुण हैं, शक्तियाँ हैं। परन्तु वे कर्म के आवरण से ढँक जाने पर उसका रुप मलिन हुआ है। इसलिए आत्मा का नकली स्वरुप प्रकट हुआ है। जीव को सूर्य-जैसा समझे तो इसमें आठ प्रकार के गुणरुप प्रकाश कहलाते है। सूर्य पर आठ प्रकार के बादल आ जाएँ वैसे जीव पर आठ प्रकार के कर्मरुपी बादल आ जाने से उसका प्रकाश ढँक गया है और उसके साथ जीव पर नकली परतें खडी हो गई है।

उदाहरण के तौर पर ज्ञानावरण कर्म से जीव में रहा हुआ अनन्तज्ञान (सर्वज्ञपना) ढँक जाने से अज्ञानपना, मूर्खपना, मंदबुद्धिपना, विस्मरणशील स्वभाव आदि खडे हुए।

सामने के चित्र में जीव का (अर्थात् अपना) आंतरिक स्वरुप कैसा भव्य है वह बताया है। परन्तु आज कर्मरुपी बादलों से घिरे हुए कैसे मिश्रित स्वरुपवाले बन गये हैं। उसकी नीचे के कोष्टक में स्पष्टता है।

जीव का स्वरुप	उसको ढँकनेवाले कर्मरुपी बादल	जीवका नकली स्वरुप
(१) अनन्त ज्ञान	(१) ज्ञानावरणीय कर्म	(१) अज्ञान, मन्द, मूर्ख, जड, विस्मरणशील...
(२) अनन्त दर्शन	(२) दर्शनावरणीय कर्म	(२) आँख वगैरह नहीं होना। अर्थात् अन्धे, बहरे, लूले-लंगडे तथा नींद के प्रकार।
(३) सम्यग्दर्शन	(३) मोहनीय कर्म	(३) मिथ्यात्व, अविरति, राग, द्वेष, काम, क्रोध...
(४) अनन्तवीर्यादि	(४) अन्तरायकर्म	(४) दुर्बलता, कृपणता, दरिद्रता, पराधीनता...
(५) अनन्तसुख	(५) वेदनीय कर्म	(५) साता(सुख) असाता (कष्ट, पीडा, दुःख)।
(६) अजर-अमरता	(६) आयुष्यकर्म	(६) जन्म, जीवन, मरण।
(७) अरुपीपना	(७) नामकर्म	(७) नरकादि गति, एकेन्द्रियादि शरीर, रुप, यश, अपयश, सौभाग्य, दुर्भाग्यादि...
(८) अगुरु-लघुपना	(८) गोत्रकर्म	(८) उच्चकुल, नीचकुल।

ईश्वर कर्ता नहीं, कर्म कर्ता है।

जीव, कर्म, ईश्वर

जीव को किसने बनाया ? दुनिया किसने बनाई ?

जीव नया नहीं बना है । वह आकाश की तरह अनादिकाल से (जिसकी कोई शुरुआत नहीं वह अनादि) है । जीव के कर्म इसके नये-नये शरीर बनाते है, परन्तु कोई ईश्वर जीव बनाता नहीं । नया तो देह बनता है, जीव तो वो ही पुराना होता है ।

दुनिया यानी क्या ? जमीन, पर्वत, नदी, पेड इत्यादि ही न ! ये क्या है ? एकेन्द्रिय जीव के शरीर. और ये भी उन जीवों के कर्म से बने हैं, किसी ईश्वरने बनाए नहीं है, तो फिर शरीर बनानेवाले कर्म मतलब क्या ? कर्म यह भी सूक्ष्म पुद्गल (द्रव्य) है । (देखिए चित्र नं.-१,२,३) पवन घर में धूल लाता है, हवा चक्की को फिराती है, लोह-चुंबक लोहे को खींचता है । वहाँ धूल लानेवाला, चक्की को फिरानेवाला या लोहे को खींचनेवाला कोई ईश्वर है ? नहीं न ! इस प्रकार जीव के कर्म जीव पर शरीर के पुद्गल चिपकाते है । बाकी शरीर बनानेवाला कोई ब्रह्मा नहीं है । (चित्र-४)

कर्म जीव को भिन्न-भिन्न गति में फिराता है । जीव के पास सुख-दुःख के साधन खींच लाता है । जीव को सुखी-दुःखी बनाता है । यह सभी करनेवाला कोई ईश्वर नहीं है । किन्तु कर्म है । (चित्र-५)

कर्म से ही नये-नये शरीर, कर्म से सेठाई, कर्म से पैसा, कर्म से बंगला, कर्म से रुग्णता, कर्म से बन्धन, कर्म से मौत वगैरह होते है ।

ये कर्म कहाँ से आये ? **जीव प्रभु-भक्ति में तरबोर हो, वैराग्य, ज्ञान, दान, दया, तप वगैरह में रत हो, तब उसको शुभकर्म (पुण्य) चिपकते है ।**

जीव हिंसा, असत्य (झूठ), चोरी, रंगराग, बहुत सम्पत्ति एकत्रित करने की इच्छा या इकट्ठा किया हुआ सँभाल के रखने की मूर्च्छा रुप परिग्रह वगैरह में आसक्त होता है तब उसको अशुभ कर्म (पाप) चिपकते हैं ।

दीए के ऊपर का ढक्कन उसके प्रकाश को ढँकता है वैसे जीव पर रहे हुए कर्म जीव के ज्ञान, सुख, शक्ति आदि को ढँक देते हैं । **परन्तु गुरुदेव के उपदेश के अनुसार धर्म करें, चारित्र लेकर बहुत ही अच्छा संयम, स्वाध्याय, तप आदि करें तो उनके प्रभाव से सभी कर्मों का नाश होता है और जीव स्वयं शिव, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त परमात्मा बनता है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है ।** (चित्र-६)

पुद्गलास्तिकाय

काष्ट
पत्थर
मिट्टी
रत्न
धातु
मकान
शव
अलोकाकाश
लोकाकाश
धर्मास्तिकाय
अलोकाकाश
काल
स्थिति सहाय दृष्टान्त
गति सहाय दृष्टान्त

अजीव और षड् द्रव्य

जिसमें ज्ञान नहीं है, चैतन्य नहीं है, जो सहज ढँग से अपने आप कोई कार्य करने के लिये समर्थ नहीं है वह अजीव कहलाते हैं-जड कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर थम्भा, लकडी आदि...। ऐसे अजीव विश्व में पाँच हैं।

(१) पुद्‌गल (२) आकाश (३) काल (४) धर्मास्तिकाय और (५) अधर्मास्तिकाय।

(१) जिसमें रुप, रस, गन्ध, स्पर्श हो यानी सामान्यतया जो दिखाई दे सकते हैं, छू सकते हैं, चख या सूँघ सकते हैं वे सभी। जिनका संयोग-विभाग (मिलना-छूटना), बढना-घटना होता है अर्थात् पूरन (बढना) गलन (घटना-सडना-नाश-नष्ट होना) हो सकता है वह पुद्‌गल कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर लकडी, मिट्टी, मकान, पत्थर, अस्त्र, शस्त्र, मुर्दा वगैरह। आवाज (शब्द), अन्धकार, छाया (परछाई) ये सभी पुद्‌गल हैं। मन और कर्म भी पुद्‌गल हैं।

(२) दूसरी वस्तु को रहने के लिए जो स्थान (जगह) देता है वह आकाश कहलाता है। दूसरे द्रव्यों सहित का आकाश वह लोकाकाश। और लोक से बाहर का आकाश वह अलोकाकाश। तीसरे चित्र में बताये अनुसार दो पाँव चौडे कर के कमर पर हाथ देकर खडे हुए मनुष्य जैसी जगह वह लोकाकाश, बाहर का अलोकाकाश।

(३) क्षण, मिनिट, घण्टा, दिन-रात, मास, वर्ष-ये भी सभी काल कहलाते हैं। उसके मुख्य आधार ऐसे सूर्य के चित्र से काल बताया है।

(४) जीव और पुद्‌गल गमनागमन (जाना और आना) करते हैं, तो वह अनन्त आकाश में कही के कहीं क्यो नहीं जाते? तितर-बितर (छिन्न-भिन्न) क्यों नहीं होते? निश्चित (अमुक) ही भाग में क्यों व्यवस्थित रहते हैं? क्योंकि इतने ही भाग में उनको गति करने के लिए आवश्यक सहायक वस्तु है - उसका नाम धर्मास्तिकाय द्रव्य है। जैसे पानी मछली के चलने में सहायक है वैसे जीव और पुद्‌गल को गति में सहायक धर्मास्तिकाय है।

(५) अशक्त वृद्ध मनुष्य को खडे रहने में लकडी जैसे सहायक बनती है वैसे जीव और पुद्‌गल को स्थिरता में सहायक वस्तु-अधर्मास्तिकाय है।

ये पाँचों अजीव द्रव्य है। उसमें पुद्‌गल देख सके वैसा मूर्त है। बाकी के चार अमूर्त है। इसमें जीव द्रव्य को जोडने से कुल षड् (छह) द्रव्य माने जाते है।

आज की बिजली-शक्ति, भाप-शक्ति, अणु-शक्ति (एटम-बंब) एरोप्लेन, रेडियो, टी.वी., फोन, इन्टरनेट, उपग्रह, विविध यंत्र-शक्ति, ये सभी पुद्‌गल द्रव्य और पुद्‌गल शक्ति है।

१४ राजलोक

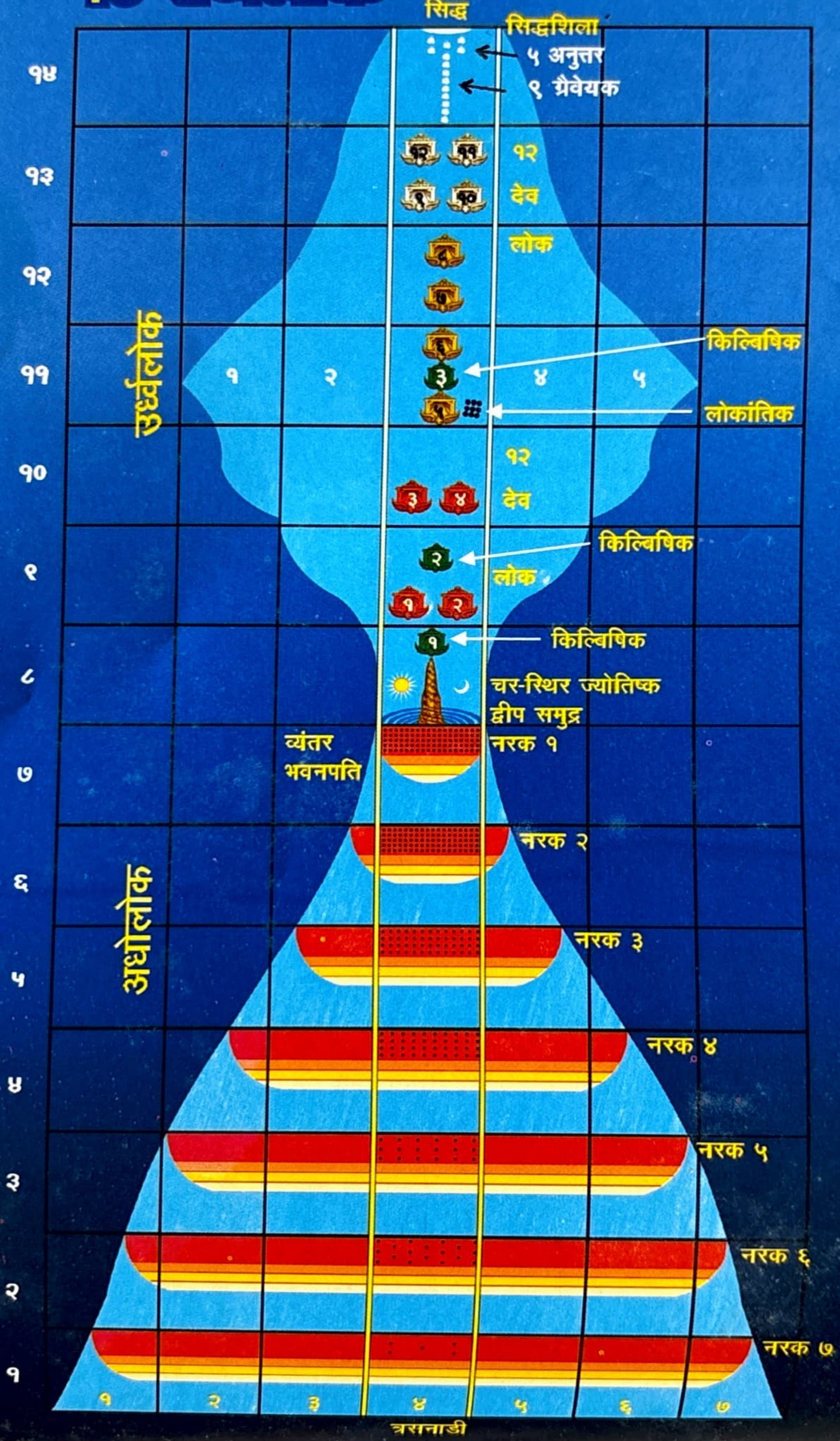

सिद्ध
सिद्धशिला
५ अनुत्तर
९ ग्रैवेयक
१४
१३
१२
११
१०
९
८
७
६
५
४
३
२
१
१२
देव
लोक
किल्बिषिक
लोकांतिक
उर्ध्वलोक
१
२
४
५
१२
देव
किल्बिषिक
लोक
किल्बिषिक
चर-स्थिर ज्योतिष्क
द्वीप समुद्र
नरक १
व्यंतर
भवनपति
नरक २
अधोलोक
नरक ३
नरक ४
नरक ५
नरक ६
नरक ७
१
२
३
४
५
६
७
त्रसनाडी

विश्व (द्रव्य और पर्याय)

विश्व क्या है ?

द्रव्यों का (छह द्रव्यों का) समूह विश्व है। छह द्रव्यों में आकाश एक द्रव्य है। आकाश के अमुक भाग में बाकी के जीव, पुद्गल वगैरह पाँचों द्रव्य रहते हैं - इतने भाग को लोक, लोकाकाश और बाकी के भाग को अलोक, अलोकाकाश कहते हैं। **लोकाकाश को जैनियों विश्व या ब्रह्माण्ड मानते है।**

(पास में लोक का चित्र है) हम लोक के मध्यभाग में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रे में रहते है। इस द्वीप के चारों तरफ समुद्र, द्वीप, समुद्र, द्वीप ऐसे असंख्य द्वीप-समुद्र है। बीच में मेरुपर्वत है। उसके आसपास सूर्य-चन्द्र घूमते हैं। उनके सतत फिरते रहने से दिन-रात होते हैं।

ऊपर १२ देवलोक हैं, उनके ऊपर ग्रैवेयक देवविमान (देवों में ही अलग-अलग प्रकार) हैं। इनके उपर पाँच अनुत्तर देवविमान हैं। इसके ऊपर सिद्धशिला है। सिद्धशीला के उपर मोक्ष प्राप्त किये हुए सिद्ध भगवन्त बिराजते हैं।

अपनी पृथ्वी के नीचे व्यंतर देवों के नगर हैं। उनके नीचे भवनपति देवों के भवन हैं। उनके नीचे नरक जीवों के ७ नरक स्थान है।

द्रव्य यानी क्या ?

जिसमें गुण रहते हैं, पर्याय अवस्थाएँ होती हैं, वह द्रव्य कहलाता है। उदाहरण के तौर पर सोने में पीलापन, चमक, भारीपन आदि गुण है। जंजीर, अँगूठी, घडी वगैरह उसकी अवस्थाएँ होती है। इसलिए सोना द्रव्य कहलाता है और उसकी अवस्थाएँ पर्याय कहलाती है।

गुण और पर्यायवाला द्रव्य - कोष्टक

	द्रव्य	गुण	पर्याय
(१)	जीव	ज्ञान, दर्शन, सुख...	मनुष्यपना, पशुपना, राजापना, भिखारीपना, बालपन, जवानी, संसारी, मुक्त...
(२)	पुद्गल	रुप, रस आदि...	पृथ्वीपना, मिट्टीपना, घडापना, ठीकरीपना, (मिट्टी के पर्याय)...
(३)	आकाश	अवकाश (जगह)दान	घटाकाश, गृहकाश आदि।
(४)	धर्मास्तिकाय	गतिसहायकता	जीव-सहायकता, पुद्गल-सहायकता।
(५)	अधर्मास्तिकाय	स्थिति -सहायकता	जीव-सहायकता, पुद्गल-सहायकता।
(६)	काल	वर्तना-होना, अस्तित्व	भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल।

९ तत्त्व

नौ तत्त्व

देखिए सामने चित्र (१) में जीव को एक सरोवर जैसा बताया है। सरोवर में ऐसे तो साफ पानी है, परन्तु इसमें नाली द्वारा कूडा-कर्कट इकट्ठा हो गया है, कूडा एकमेक हो गया है। इसमें दो रंग के विभाग हैं। थोडा कूडा दिखने में अच्छा है, थोडा खराब।

(चित्र-२) अब यदि नाली बंद हो तो नया कूडा नहीं आए और ऊपर से इसमें चूर्ण डाला जाए तो कूडा साफ हो जाता है। अन्त में सभी कूडा कचरा साफ हो जाने पर सरोवर निर्मल पानी से भरा हुआ रहता है। (चित्र-३)

(१) अपने जीव में अभी यह स्थिति है। मूलभूत रीत से इसमें निर्मल ज्ञान, दर्शन, सुख रुपी पानी है।

(२) परन्तु इसमें कर्म कूडा इकट्ठा हुआ है। ये कर्म अजीव है।

(३) कर्म के भी दो विभाग है। अच्छे फल (सुख) देनेवाले कर्म वह पुण्य।

(४) खराब फल (दुःख) देनेवाले कर्म वह पाप।

(५) कर्म जो नाली से बहकर आते हैं वह आस्रव।

इन्द्रियों की आधीनता-(आँख, नाक, कान, जीभ के मनपसन्द ही करना - टी.वी., होटल, मदमस्त गीत सुनना आदि), हिंसा आदि अव्रत (बाधापूर्वक पाप का त्याग नहीं करना वह), कषाय इत्यादि आस्रव है।

(६) आस्रव - नाली को बन्द करना या आड करना वह संवर। अच्छी भावना, सामायिक, अहिंसा, क्षमा आदि संवर है।

(७) पुराने कर्मों को नाश करनेवाला चूर्ण वह निर्जरा-तपस्या,स्वाध्याय, प्रायश्चित्त वगैरह निर्जरा है।

(८) संसारी जीव के साथ कर्म एकमेक चिपके वह बन्ध।

(९) सर्व कर्मों का नाश होते ही जीव प्रकट हुए केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुखादिवाला बनता है वह मोक्ष। अर्थात् जीव अपने मूलभूत स्वरुप को प्राप्त करे वह मोक्ष।

(१) जीव (२) अजीव (३) पुण्य (४) पाप (५) आस्रव **(६) संवर (७) निर्जरा (८) बंध और (९) मोक्ष, ये नौ तत्त्व कहलाते हैं।** तीर्थंकर भगवानने जिस तरह बताया है उसी तरह मानते है। उस पर अचूक, द्रढ श्रद्धा रखते हैं उनमें समकीत-सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ कहलाता है।

सम्यक्त्व आए तो मोक्ष निश्चित हो जाता है।

पुण्य और पाप

पुण्य और पाप

इस जगत में जीव की इच्छानुसार क्यों नहीं होता ? प्रयत्न करने पर भी मनपसन्द सफलता क्यों नहीं मिलती ? अचानक आफत क्यों आती है ?

दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को एक जैसे संयोग होने पर भी एक को लाभ और दूसरे को हानि क्यों होती हैं ? एक को सुख और दुसरो को दुःख क्यों मिलता है ?

कहें, यह सब पाप-पुण्य का खेल है । **कर्म (भाग्य) दो तरह के - एक अच्छा (शुभ-सुख देनेवाला)**और दूसरा बूरा (अशुभ-दुःख देनेवाला) अच्छा कर्म-पुण्य, बुरा कर्म-पाप । पुण्य जीव को सुख प्रदान करता है । मनपसन्द/इच्छित प्रदान करता है, सद्बुद्धि देता है । पाप दुःख देता है, अप्रिय देता है, दुर्बुद्धि देता है ।

ऊपर के पहले चित्र में सेठाई, मेवा-मिठाई, बहुत अच्छा व्यापार, बँगला, मोटर,हृष्ट-पुष्ट शक्तिशाली शरीर और देव-विमान दिखाई देते हैं । ये सब पुण्य हो तो मिलते है ।

दूसरे चित्र में - बैल को भारी बोझ और चाबुक, मजदुरी, दुर्बलता, भंगीपना (कूडा उठाना पडे), बलवान की लात खानी पडे, प्रयत्न करने पर भी विद्यालाभ न हो, जेल और नरक ये सब दिखाई देते हैं । ये पूर्व में किये हुए पाप का फल है ।

ऐसे कर्म के कुल १५८ भेद हैं । उसमें...

शातावेदनीय नामके पुण्य से अच्छा आरोग्य मिलता है । उच्चगोत्र-पुण्य से अच्छे ऊँचे कुल में जन्म मिलता है । देवायुष्य और मनुष्यायुष्य-पुन्य से देव-मनुष्य होते हैं । शुभ नामकर्म से अच्छी गति, अच्छा रुप, अच्छा गठन, यश-कीर्ति, सौभाग्य (लोकप्रियता, लोकमान्यता) वगैरह मिलते है ।

अशाता वेदनीय पापकर्म से दुःख, वेदना,रोग आते हैं । नीचगोत्र से चमार-भंगी के कुल में जन्म होता है । अशुभ नाम-कर्म से एकेन्द्रियपना, कीडे-मकोडे बनना, अपयश, अपमान वगैरह मिलते हैं । ज्ञानावरण पाप से विद्या नहीं आती, याददास्त नहीं मिलती है । मोहनीय पाप से दुर्बुद्धि, क्रोध, अभिमान, लोभ जैसे विकार होते हैं । अन्तराय पाप से इच्छित नहीं मिलता और न उन्हें भोग ही सकते हैं, दुर्बलता इत्यादि रहती है ।

पुण्यकर्म बांधने के उपाय :

साधु-साधर्मिक आदि सुपात्र को दान, गुणवान की अनुमोदना, परमात्मा आदि की स्तुति-भक्ति, नमस्कार, दया, नियम, तपस्या, क्षमाभाव रखना, सत्य बोलना, नीति का पालन करना, अच्छे विचार और अच्छे आचार में आगे बढना इत्यादि ।

पापकर्म बांधने के कारण :

देव, गुरु और धर्म की निन्दा - आशातना करनी, धर्म में अन्तराय (रुकावट डालना), हिंसा, असत्य-झूठ, अनीति, दुराचार-भ्रष्टाचार, इन्द्रियों के विषयों में लम्पटता (अच्छा देखकर तुरन्त प्राप्त करने की उत्कण्ठा) शिकार, जूआँ, कन्दमूल, होटल आदि अभक्ष्य भक्षण, रात्रि -भोजन इत्यादि ।

आस्रव

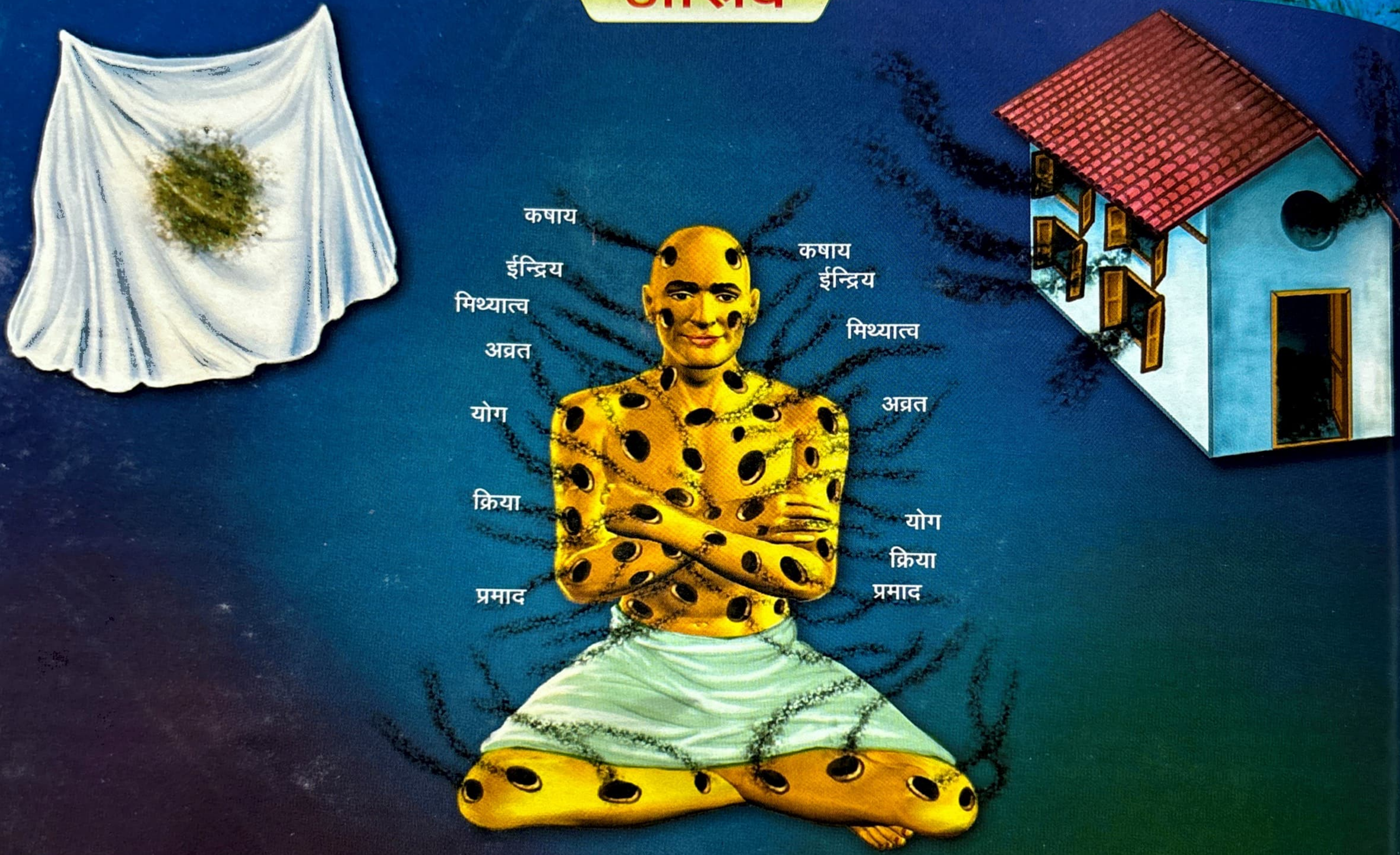
कषाय
ईन्द्रिय
मिथ्यात्व
अव्रत
योग
क्रिया
प्रमाद
कषाय
ईन्द्रिय
मिथ्यात्व
अव्रत
योग
क्रिया
प्रमाद

आस्रव

पुण्य-पाप अर्थात् शुभ-अशुभ कर्म जीव में कौन लाता है ? आस्रव....। कपडे पर तेल के धब्बे पर जैसे धूल चिपकती है वैसे आस्रव के कारण आत्मा पर कर्म-धूल चिपकती है, अथवा आस्रव मानों जीवरुपी घर की खिडकियाँ हैं जिसमें से कर्मरुपी धूल जीव-घर में प्रवेश करती है । अथवा मानो कि आस्रव एक सुराख है जिसके द्वारा कर्म-धूल जीव में भरती है । (देखिये चित्र)

अथवा पाठ १४ के चित्र अनुसार आस्रव मानो मुख्य नाली है, जैसे घर की नाली गन्दे पानी को मोरी में इकट्ठा करती है, नाली सरोवर में कूडा खींच लाती है वैसे इन्द्रिय इत्यादि आस्रव जीव में कर्म -कूडा लाकर इकट्ठा करते हैं ।

आस्रव मुख्य पांच है - (१) इन्द्रिय (२) कषाय (३) अव्रत (४) योग और (५) क्रियाएँ ।

(१) अपनी आँखे, जीभ, कान वगैरह इन्द्रियाँ दिखाई देते जड पदार्थो की ओर राग-द्वेष से (अच्छा-बूरा मानकर) दौडती हैं और तत्क्षण जीव के साथ कर्म का जत्था चिपकता हैं ।

(२) हम क्रोध करते है, गर्व करते हैं, माया-कपट करते हैं या लोभ - ममता का सेवन करते हैं तो तत्काल आत्मा पर कर्म चिपकते हैं । ये सभी कषाय कहलाते हैं ।

इसी प्रकार हास्य (मजाक से या स्वाभाविक), शोक, हर्ष (आनन्द), खेद, भय, मैल - गन्ध आदि के प्रति या वैसे वस्त्रादि धारण करनेवाले के प्रति तिरस्कार, ईर्ष्या, बैर, कुमति, काम-वासना, इन सभी को भी कषायों में ही समझना है ।

(३) चाहे कभी हिंसा न करें, झूठ न बोले, चोरी-अनीति न करें, स्त्री-संबंध या ज्यादा मोजशौक न करें या अतिशय धन-दौलत-परिग्रह न रखें परन्तु यदि 'ये मैं कदापि नहीं करुँगा' । ऐसा व्रत-प्रतिज्ञा न हो तो यह अव्रत-अविरति आस्रव कहलाएगा । इससे भी पापकर्म नहीं करने पर भी कर्म बँधते हैं । जैसे घर का उपयोग नहीं करने पर भी मालिकी हो तो टैक्स भरना पडता है, वैसे ही पाप न करने पर भी पाप करने की अपेक्षा रखने से पापकर्म बँधते हैं ।

(४) अपने मन से विचार, वचन से वाणी और काया से बरताव करते हैं वह 'योग' आस्रव है । इसमें विचारना, बोलना, हाथ-पाँव हिलाना-डुलाना, चलना-दौडना वगैरह आता है ।

(५) क्रिया आस्रव में मिथ्यात्व वगैरह की चेष्टा आती है । कुल २५ प्रकार की क्रियाएँ हैं जो गुरु के सत्संग से जानें ।

ये तो कर्मबंध के सामान्य कारणभूत आस्रव गिने । फिर प्रत्येक कर्म के भिन्न-भिन्न आस्रव भी हैं । उदाहरण के तौर पर ज्ञान-ज्ञानी की, पुस्तक वगैरह की आशातना से ज्ञानावरण कर्म बँधते हैं । जीव की दया सातावेदनीय पुण्य बँधाते हैं, इत्यादि । देव,गुरु और धर्म का राग, पाप पर द्वेष, धर्म-क्रिया ये शुभ-आस्रव हैं ।

संवर

संवर

आस्रव से आत्मा में कर्म चिपकते हैं, जो जो आस्रव को रोकनेवाली, बन्द करनेवाली, कर्म को रोकनेवाली प्रवृत्ति होती है वह संवर कहलाती है । ऐसे कर्म को रोकनेवाले **संवर मुख्यतया ६ हैं।**

(१) समिति, (२) गुप्ति (३) परीसह (४) यतिधर्म (५) भावना और (६) चारित्र।

(१) समिति अर्थात् अच्छी तरह से सावधानीपूर्वक जयणा (देखभाल) वाली प्रवृत्ति । जैसे कि (अ) चलने में जीव नहीं मरे इसकी सावधानी रखना (ब) बोलने में हिंसक या झूठ नहीं बोले उसकी सावधानी । (क) हिंसा-माया-अहंकार आदि पापों बिना खान-पान आदि जीवन जरुरियात की सामग्री प्राप्त करनी और इस्तेमाल में आए उसकी सावधानी । (ड) वस्तु को लेने-रखने में या (इ) मल-मूत्रादि त्यागने स्थान पर भी जीव नहीं मरे इसकी सावधानी रखनी ।

(२) गुप्ति अर्थात् अशुभ (खराब-हीन) विचार, वाणी और बर्ताव को रोककर शुभ विचार, वाणी और वर्तन-व्यवहार में रमण करना ।

(३) परीसह अर्थात् भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी,डांस-मच्छर, रोग-वेदना, अज्ञान वगैरह को कर्म के नाश में सहायक समझकर शान्ति से सहन कर लेना, इसी तरह सत्कार, होशियारी आदि में जरा भी अहंकार या हर्ष नहीं करना ये भी परीसह ।

(४) यति-धर्म अर्थात् साधु भगवन्तों के जीवन में सहजरुप से सधा हुआ आचरण । वह १० प्रकार का है-

(१) क्षमा (२) नम्रता (विनयशील होना), (३) सरलता (४) निर्लोभता (सामग्री या संयोग पर आसक्ति नहीं) (५) सत्य (६) संयम (७) तप (८) त्याग (९) अपरिग्रह (जरूरत से ज्यादा सामग्री नहीं रखना) और (१०) ब्रह्मचर्य ।

ये तत्त्व जैसे-जैसे जीवन में सधते जाएँगे वैसे-वैसे कर्म आते हुए अटकेंगे ।

(५) भावना अर्थात् वैराग्य, भक्ति,उदारता आदि गुण पैदा करनेवाला अच्छा चिंतन । उदाहरण के तौर पर ' जगत के सभी संयोग नाशवन्त हैं, जीवन को देव-गुरु और धर्म के बिना किसी की शरण नहीं है, संसार विचित्र और असार है' आदि । शास्त्रों में अनित्य, अशरण वगैरह १२, मैत्री आदि ४ और अन्य अनेक प्रकार की भावनाएँ बताई हैं ।

(६) चारित्र अर्थात् पच्चक्खान (प्रतिज्ञा) करके हिंसा आदि पाप प्रवृत्तियों को छोडना तथा सामायिक वगैरह ।

प्रभु-भक्ति, शासनसेवा वगैरह धर्मकार्य में जुडने से सांसारिक पापप्रवृत्ति जितनी रुके उतने प्रमाण में संवर हुआ कहलाता है ।

निर्जरा

निर्जरा

संवर से नया कर्मबन्ध अटकता है, किन्तु पुराने बँधे हुए कर्मों का क्या होगा ?
वे किससे नाश होंगे ? **निर्जरा से पूर्व में बांधे हुए कर्म नाश होते हैं।**
तप से कर्म का नाश होता है इसलिए यहाँ **निर्जरा के तौर पर बाह्य और अभ्यंतर तप लेना है।**

● बाह्य तप में क्या-क्या गिने जाते हैं ? निम्नलिखित बाह्य तप में आते हैं-

(१) **अनशन :** अर्थात् पच्चक्खाण (प्रतिज्ञा) पूर्वक भोजन का सर्वथा या आंशिक त्यागरुप उपवास, आयंबिल, एकासणा वगैरह...
(२) **ऊनोदरिका :** भूख हो उससे कम भोजन करना (पाव, आधा या पौन भाग जितना कम)।
(३) **वृत्तिसंक्षेप :** भोजन की संख्या का संक्षेप - कम करना (मैं...से ज्यादा द्रव्य इस्तेमाल नहीं करुँ इस तरह)।
(४) **रस-त्याग :** दुध-दहीं-घी, तेल, गुड-शक्कर, तला हुआ आदि में से सभी का अथवा किसी एक का त्याग।
(५) **काय-क्लेश :** धर्म-क्रिया के कष्ट सहना। जैसे कि, साधु भगवन्तों पाँव से चलकर विहार करें, लोच करायें, घण्टों खडे रहकर कायोत्सर्ग करें, धूप में खडे रहें, शर्दी में खुले बदन साधना करें इत्यादि।
(६) **संलीनता :** मन-वचन-काया को स्थिर रखना। उदाहरण के रुप में मौन, कषाय की इच्छा या भावना पर अंकुश रखना वगैरह।

● अभ्यंतर तप में क्या आता है ?

(१) **प्रायश्चित्त :** गुरु के सामने खुले दिल से पापों को स्वीकार करके उसके दण्ड के रुप में तप आदि करना।
(२) **विनय :** देव, गुरु, ज्ञान, आदि का बहुमान और भक्ति...
(३) **वैयावच्च :** संघ, साधु आदि की सेवा...उसमें भी बालक, वृद्ध, ग्लान (बिमार) तपस्वी आदि की विशिष्ट सेवा करना।
(४) **स्वाध्याय :** धार्मिक- शास्त्र पढना, पढाना, याद करना इत्यादि।
(५) **ध्यान :** एकाग्र मन से तीर्थंकरों की आज्ञा, कर्म के शुभ-अशुभ फल, राग-द्वेष के नुकशान, लोकस्थिति (विश्व का स्वरुप) वगैरह का चिन्तन।
(६) **काउसग्ग (कायोत्सर्ग) :** हाथ लम्बे रख कर मौनपने से ध्यान में स्थिर खडा रहना।

इन बारह प्रकार में से कोई भी तप शक्य हो उतना करना चाहिये, इससे अगणित कर्म पुद्गल के समूह का नाश हो जाता है।

कर्म तोडने के लक्ष्य से इच्छापूर्वक यदि तप किया जाय तो सकाम निर्जरा होती है और दूसरी लालसा से या पराधीनरुप से काय-कष्ट भोगने से या भूखा रहने से अकाम निर्जरा होती है। सकाम निर्जरा में कर्म-क्षय बहुत होता है और शीघ्र सद्गति और परंपरा से मुक्ति प्राप्त होती है।

बंध

बन्ध

जैसे कैदी रस्सी से ऊपर-नीचे-बीच में बांधा जाता है वैसे **संसारी जीव सम्पूर्णतया चारों तरफ से कर्म से बांधे जाते हैं।** इसलिए इसको काया की कैद में (जेल में) बन्द होना पडता है, चार गति में भ्रमण करना पडता है। अच्छे भाव से पुण्य-कर्म का बन्ध होता है, (सोने की बेडी), और खराब भाव से पापकर्म का बन्ध होता है (लोहे की बेडी)। दोनों आत्मा को संसार की कैद में बांधकर रखते हैं।

लोहे के गोले को तपाने पर अग्नि एकरुप हो जाती है, दुध में पानी डालने पर दोनों एकरुप हो जाते है, वैसे आत्मा में कर्म एकरुप हो जाते है। कर्म के एकरुप होने के साथ ही कर्म का स्वभाव (प्रकृति-जीव पर होनेवाला प्रभाव) काल (स्थिति-कितना समय रहेगा ?) तीव्र-मन्द रस (उसका प्रभाव कितना होगा ?) और प्रमाण (**Quantity**-जत्था-प्रदेश) निश्चित हो जाता है। इसको **कर्म का प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, रसबंध और प्रदेशबंध कहा जाता है।**

सोंठ वगैरह का (सोंठ, गुड, घी आदि मिलाकर) लड्डु बनाया हो तो उसकी प्रकृति (स्वभाव) जैसे कि, वायु (गेस) दूर करने की, उसकी स्थिति-अमुक दिन तक रहेगा फिर बिगड जाएगा, इसका रस तीखा-मीठा और उसमें ५०-१०० ग्राम जितना प्रमाण-जत्था होता है। इस प्रकार कर्मबन्ध के समय कैसे भावसे कर्म बांधा गया है तदनुसार बँधे कर्म के विभाग होकर किसी की प्रकृति ज्ञान को रोकने की, किसी की साता-असाता (सुख-दुःख) देने की, तो किसी की (राग-द्वेष-मिथ्यात्व आदि) मोह कराने की आदि प्रकृति निश्चित होगी है तथा इसमें (अमुक-अमुक) कर्म-अणु को टिकने की अमुक काल-स्थिति, तीव्र या मन्द रस और प्रत्येक विभाग में कर्म-पुद्गल का अमुक-अमुक समूह निश्चित होता है। काल पकने पर (योग्य समय आने पर) कर्म वैसा-वैसा फल दिखाता है।

कर्म के अच्छे-बुरे फल भुगतते जीव मनोविकारों के आधीन हो जाता है और इन्द्रियों, कषायों, आरम्भ, परिग्रह वगैरह द्वारा नये-नये कर्म बांधता है। पूर्व कर्म भी इसी तरह बाँधे। यह झमेला-विषचक्र अनादिकाल से चलता आया है। इसलिए संसार अनादिकाल से चलता है।

अच्छी भावना में और धर्म साधना में रहे तो कई पाप-कर्म का बन्ध अटकता है और बांधे हुए कितने ही पापकर्म पुण्य में बदल जाते हैं। कुछ पापकर्म का रस कम होता है और पुण्यकर्म का रस बढ जाता है तो कुछ पापकर्म सर्वथा नष्ट हो जाते है। सब कर्मों का सर्वथा नाश हो तब संसार की, जन्ममरण की अविरत परंपरा का अन्त हो जाता है यानी जीव मुक्ति में गमन करता है।

मोक्ष

आस्रव का त्याग करके संवर का आचरण किया जाय तब नये कर्म आते रुकें (अटकें) । निर्जरा के भेद का आचरण करते-करते पुराने कर्म नाश हो जाते है । फिर **आत्मा सर्व-कर्म से रहित बने उसका नाम मोक्ष ।**

जिन कारणों से संसार चलता है या बढता है उनसे विरुद्ध कारण व्यवहार में लाने से संसार जरुर अटकता है और मोक्ष होता है । जैसे, बहुत शीतल पवन से सर्दी लगी हो तो गरमी सेने से स्वस्थता मिलती है ।

परन्तु अनादिकाल से हुआ आत्मा और कर्म का संयोग किस प्रकार अलग हो ? जैसे, खान में से निकला हुआ सोना उसके अस्तित्व से (बहुत पुराने काल से) मिट्टी से धुला होता है, फिर भी उस पर क्षार, अग्नि आदि के प्रयोग द्वारा शुद्ध-सो टच का सोना बनता है । वैसे ही सम्यक्त्व, संयम, ज्ञान, तपस्या वगैरह से अनादिकाल से मैली, कर्मो से भरी हुई आत्मा भी बिल्कुल शुद्ध और मुक्त बनती है । **कर्म के संयोग से संसार है तो कर्म दूर होने से मोक्ष होता है,** फिर कभी भी कर्म बँधते नही हैं और संसार खडा नहीं होता है ।

संसार में बारम्बार जन्म लेना पडे, मरना पडे, नरक में भी जाना पडे । कुत्ते, बिल्ली, गधे, कीडी-मकोडे, पेड-पत्ते, पृथ्वी वगैरह क्या-क्या होना पडे ! कितना दुःख ! कितनी घोर तकलिफ ! कैसा आत्मा का भयंकर अपमान ! संसार में शरीर है इसलिए भूख लगती है, प्यास लगती है, रोग आते है, शोक होता है, दरिद्रता, अपमान, गुलामी, विडम्बना (कष्ट), चिन्ता, सन्ताप तथा अन्य कई प्रकार के दुःख आते है ।

मोक्ष में शरीर का सम्बन्ध होता ही नहीं है । अकेली अरुपी शुद्ध आत्मा होती है इसलिए कोई दुःख नहीं । अकेला सुख-अनहद अनन्त सुख होता है ।

वहाँ कोई शत्रु नहीं, कोई भी रोग नहीं, कोई उपाधि नहीं, कोई इच्छा ही नहीं इसी लिए अनन्त सुख...।

प्रश्न : मोक्ष में खाना-पीना, चलना-फिरना या कुछ करने का ही नहीं तो सुख क्या ?

उत्तर : खाना पडे, पीना पडे ये तो सभी उपाधि है । यह भूख-प्यास-जरुरत वगैरह की पीडा से उत्पन्न होती है । मोक्ष में कोई पीडा ही नहीं तो किस लिए उपाधि हो ? किस लिए हृदय में सन्ताप हो ? वहाँ तो अनन्त ऐसा केवलज्ञान है । इस ज्ञान में सारा जगत दिखाई देता है ।

अनन्त आत्मा मोक्ष में गये है वे सिद्ध भगवन्त कहलाते है । कोटि-कोटि नमस्कार उन सिद्ध भगवन्तों को...॥

पुस्तक का भुतकाल

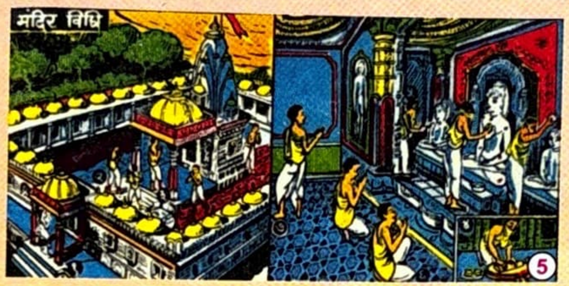

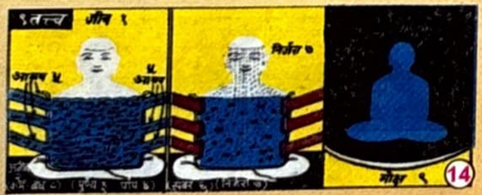

कंठस्थ करने योग्य शुभ नामावली

२४ तीर्थंकरों के नाम

१. श्री ऋषभदेव
२. श्री अजितनाथ
३. श्री सम्भवनाथ
४. श्री अभिनंदन स्वामी
५. श्री सुमतिनाथ
६. श्री पद्मप्रभ स्वामी
७. श्री सुपार्श्वनाथ
८. श्री चन्द्रप्रभ स्वामी
९. श्री सुविधिनाथ
१०. श्री शीतलनाथ
११. श्री श्रेयांसनाथ
१२. श्री वासुपूज्य स्वामी
१३. श्री विमलनाथ
१४. श्री अनन्तनाथ
१५. श्री धर्मनाथ
१६ श्री शान्तिनाथ
१७. श्री कुंथुनाथ
१८. श्री अरनाथ
१९. श्री मल्लिनाथ
२०. श्री मुनिसुव्रत स्वामी
२१. श्री नमिनाथ
२२. श्री नेमिनाथ
२३. श्री पार्श्वनाथ
२४. श्री महावीर स्वामी

अरिहंत के १२ गुण

१. अशोक वृक्ष
२. देवकृत पुष्पवृष्टि
३. दिव्यध्वनि
४. देवदुंदुभी
५. तीन छत्र
६. भामंडल
७. चामर
८. सिंहासन
९. अपायापगमातिशय
१०. ज्ञानातिशय
११. वचनातिशय
१२. पूजातिशय

भगवान महावीर के ११ गणधर

१. श्री ईन्द्रभूति गौतम स्वामी
२. श्री अग्निभूति स्वामी
३. श्री वायुभूति स्वामी
४. श्री व्यक्त स्वामी
५. श्री सुधर्मा स्वामी
६. श्री मंडित स्वामी
७. श्री मौर्यपुत्र स्वामी
८. श्री अकंपित स्वामी
९. श्री अचलभ्राता स्वामी
१०. श्री मेतार्य स्वामी
११. श्री प्रभास स्वामी

श्री महावीर प्रभु के १० महाश्रावक

१. आनन्द
२. कामदेव
३. चुलनीपिता
४. सुरादेव
५. चुल्लशतिक
६. कुंडगोलिक
७. सक्दालपुत्र
८. महाशतक
९. नंदीनीपिता
१०. सालिहीपिता

नवपद

१. अरिहंत
२. सिद्ध
३. आचार्य
४. उपाध्याय
५. साधु
६. दर्शन
७. ज्ञान
८. चारित्र
९. तप

श्रावक के १२ व्रत

१. प्राणातिपात विरमण व्रत	५
२. मृषावाद " व्रत	अ
३. अदत्तादान " व्रत	णु
४. स्वदार - संतोष	व्र
परस्त्रीगमनविरमण व्रत	
५. परिग्रहपरिमाण व्रत	त

६. दिग् - परिमाण व्रत	३
७. भोगोपभोगविरमण व्रत	गुण
८. अनर्थदंडविरमण व्रत	व्रत
९. सामायिक व्रत	४

१०. देशावकाशिक व्रत	शिक्षा
११. पौषधोपवास व्रत	व्र
१२. अतिथि-संविभाग व्रत	त

अक्षरज्ञान द्वारा बालक के जीवन के विकास की आधारशिला बनती है बालक की बालपोथी।
तत्त्वों के ज्ञान द्वारा सर्वजीवों के आत्मविकास की आधारशिला बनेगी यह

सचित्र तत्त्वज्ञान बालपोथी

- ✡ क्या जीवन की सच्ची दिशा का मार्गदर्शन चाहते हैं ?
- ✡ विश्व की विचित्रताओं का रहस्यस्फोट करना चाहते हैं ?
- ✡ ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ऐसे प्रश्नों का सही समाधान पाना है ?
- ✡ समग्र धर्मका सार संक्षेप में समझना चाहते हैं ?

तो उठाईये पुस्तक, पलटिये पन्ना, देखते हि रह जायेंगे,
रंगबिरंगी चित्रों की सहाय से जो समझाया है...
चक्षु विकस्वर होगी, मन प्रसन्न हो जायेगा...

डीझाइन
जैनम् ग्राफीक्स,
अहमदाबाद, Ph:25627469. M. 98258 51730